UNIVERSAL LIBRARY
OU_186212
UNIVERSAL LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 491.25 V13Ra Accession No. GH 1891

Author वाजपेयी पंडित किशोरीदास.

Title राष्ट्रभाषा का व्याकरण

This book should be returned on or before the date last marked below.

राष्ट्रभाषाका व्याकरण

"अकः शब्दः सम्यग् ज्ञातः सुप्रयुक्तःस्वर्गे, लोके च, कामधुग् भवति

पंडित किशोरीदास वाजपेयी

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा

प्रकाशक :
मोहनलाल भट्ट
मंत्री,
राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा

Checked 1965

अेक राष्ट्रभाषासे ही तो,
अेक हृदय है भारत-माता;
अंग-प्रदेश सभी है न्यारे,
हृदय सभीको अेक बनाता।

जय जय हिन्दी, जय जय हिन्द,
जय जय पाणिनि, जय गोविन्द !

Checked 1969
Checked 1969

सर्वाधिकार सुरक्षित
प्रथम संस्करण
मअी १९५३
मूल्य १)

मुद्रक :
गुरुराम शर्मा,
राष्ट्रभाषा प्रेस, वर्धा

लेखकका निवेदन

यह व्याकरण 'अहिन्दी भाषी' हिन्दी-विद्यार्थियोंके लिअे लिखा गया है; राष्ट्रभाषा प्रचार समिति (वर्धा) की 'कोविद' परीक्षाके लिअे। लेखककी धारणा यह रही है कि 'कोविद' में बैठनेवाले निरे बच्चे ही नही होते, अपनी-अपनी मातृभाषाके अच्छे जानकार होते है और बहुतसे तो अपनी भाषा और साहित्यके विशेषज्ञ-विद्वान भी होते है। अिसलिअे व्याकरणकी मामूली बातोंसे पन्ने नही भरे गअे है। वैसी सब बाते 'कोविद' के परीक्षार्थी जान चुके है; यह मान कर लेखक चला है। यदि अैसा न किया जाता, तो अुन्ही बातोंके पिष्टपेषणसे पुस्तकका कलेवर भर जाता और वह सब कहनेको जगह ही न रहती, जिसका जानना 'कोविद' के लिअे जरूरी है। अिसीलिअे मल्लिनाथका—'नानपेक्षितमुच्यते' काम आया। अनपेक्षित (अंश) की अुपेक्षा !

कनखल (अुत्तर-प्रदेश)
१४-१-'५३

—किशोरीदास वाजपेयी

प्रकाशककी ओरसे

राष्ट्रभाषा कोविद परीक्षाके विद्यार्थियोंके लिये व्याकरणकी अेक अैसी पुस्तककी बहुत दिनोंसे आवश्यकता महसूस की जा रही थी जिससे अुन्हें हिन्दीके व्याकरणका प्रौढ़ ज्ञान प्राप्त हो सके। फलत: राष्ट्रभाषाका यह व्याकरण राष्ट्रभाषा-प्रेमी पाठकोंके सामने प्रस्तुत है।

अिस पुस्तकके लेखक श्री किशोरीदासजी वाजपेयी हिन्दी-व्याकरण के माने हुअे विद्वान हैं। अिन्होंने हमारी प्रार्थना स्वीकार कर पुस्तकको शीघ्र ही तैयार कर देनेका कष्ट किया अिसके लिये समिति अुनके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करती है।

व्याकरण सम्बन्धी कअी मौलिक विचार पुस्तकमें प्रस्तुत किये गये हैं। 'ये' और 'ए' के प्रयोग तथा शब्दोंके अंत्य 'अिये' तथा 'अिए' आदि रूपोंपर बडे ही सुन्दर ढगसे विवेचन किया गया है जो तर्कसगत प्रतीत होता है।

प्रस्तुत पुस्तकके पहले चार फार्मोंमें शब्दोंमें 'ए' के स्थानपर 'ये' (अु० 'लिए' के स्थानपर 'लिये', 'जाएगा' के स्थान पर 'जायगा' आदि) छप गया है। अिसका हमें खेद है। आगामी सस्करणमें अुचित सुधार कर दिया जायगा।

आशा है, राष्ट्रभाषाका यह व्याकरण विद्यार्थियोंके लिये अुपयोगी सिद्ध होगा।

हिन्दीनगर

मन्त्री
रा. भा. प्र. समिति

समर्पण

अुन महान् स्वर्गीय आत्माओंको, जिन्होंने

शताब्दियों पहले अेक राष्ट्रभाषा

बनानेकी कल्पना

की थी।

—किशोरीदास वाजपेयी

विषय-सूची

पहला अध्याय उपक्रम	पृष्ठ	१
दूसरा अध्याय अक्षर या वर्ण	,,	७
तीसरा अध्याय शब्दोंका श्रेणी-विभाजन	,,	२४
चौथा अध्याय सज्ञा, विभक्तियाँ और अुनका अुपयोग	,,	३०
पाँचवा अध्याय क्रिया-प्रकरण	,,	३९
छठवाँ अध्याय कृदन्त क्रियाअें	,,	४८
सातवाँ अध्याय 'वाच्य'या 'प्रयोग'	,,	६०
आठवाँ अध्याय प्रेरणा	,,	६५
नवाँ अध्याय गौण कर्तृत्वमें क्रियाके प्रयोग	,,	७०
दसवाँ अध्याय नाम, धातु और संयुक्त क्रियाअें	,,	७५
ग्यारहवाँ अध्याय पूर्वकालिक तथा क्रियार्थक क्रियाअे	,,	८२
बारहवाँ अध्याय विशेषण और सर्वनाम	,,	८५
तेरहवाँ अध्याय कृदन्त, तद्धित, समास	,,	९०
चौदहवाँ अध्याय अव्यय और अुपसर्ग	,,	९३
पंद्रहवाँ अध्याय वाक्य-प्रकरण	,,	९६
सोलहवाँ अध्याय भाषाकी प्रकृति और पदोंका प्रयोग	,,	१००

राष्ट्रभाषाका व्याकरण

पहला अध्याय

अुपक्रम

किसी भी भाषाके अङ्ग-प्रत्यङ्गका पूर्ण विश्लेषण-विवेचन ही व्याकरण है; जैसे कि भूतलकी चीजोंका वर्णन 'भूगोल'। व्याकरणका ही पुराना अेक नाम 'शब्दानुशासन' है; क्योंकि अिस शास्त्रमें 'शब्द' पर ही विचार होता है। साधारणतः कानसे जो सुनाअी दे, वह सब 'शब्द' है; परन्तु व्याकरणमें जिस 'शब्द' पर विचार किया जाता है, अुसकी अेक सीमा है। भाषा है सार्थक शब्दोंका समूह। 'सार्थक' भी समझनेकी चीज है। चिड़ियोंके अुड़ानेके लिअे आपने ताली बजाकर 'फट' या 'पट' जैसा कोअी शब्द किया और चिड़ियाँ अुड़ गअीं। अिस तरह यह 'फट' या 'पट' शब्द निरर्थक नहीं हुआ। बच्चा रोया, जिससे माँने समझ लिया कि अिसे भूख लगी है। अिस तरह बच्चेका वह शब्द भी निरर्थक नहीं हुआ। परन्तु भाषामें अैसे 'फट' या 'अुहूँ-अुहूँ' आदि शब्दोंपर विचार नहीं किया जाता। यहाँ 'सार्थक शब्द' का अर्थ है—'अर्थ-संकेतित शब्द'। 'अिस शब्दसे यह अर्थ समझना चाहिअे,' अैसे संकेत शब्दोंमें किये जाते हैं। अुस संकेतको समझनेवाले लोग, अुस अर्थको प्रकट करनेके लिअे, अुस शब्दका व्यवहार आपसमें करते हैं। जिस अर्थमें हमारे यहाँ 'जल' या 'पानी' शब्द काममें आता है; अुसीके लिअे अन्यत्र कहीं 'वाटर' शब्द व्यवहारमें आता है; कहीं 'आब' चलता

है। यानी चीज (अर्थ) अेक और अुसे प्रकट करनेके लिअे शब्द अनेक। हमने कहा—'जल' शब्दसे यह चीज समझना। तुमने कहा, 'बहुत अच्छा'। अब अिस जीवनीय पेय के अर्थका संकेत 'जल' शब्दमें हो गया। किसीने अुसी अर्थका संकेत 'वाटर' में मान लिया। अैसे ही संकेतित अर्थको प्रकट करनेवाले शब्द यहाँ 'सार्थक' कहलाते हैं। अिन्हींपर विचार किया जाता है। कोटि-कोटि जनोंके द्वारा गृहीत-संकेत शब्द भाषा बनाते हैं। व्याकरणमें अिन्हींके परस्पर सम्बन्ध आदि पर विचार किया जाता है।

भाषाका विश्लेषण करनेपर वाक्य, पद, वर्ण; ये तीन मुख्य तत्त्व निकलते हैं। अिन्हीं तीनों तत्त्वोंपर विचार करनेका नाम व्याकरण है। जिस शब्द या शब्द-समूहसे अेक पूर्ण निराकांक्ष बात प्रकट हो, अुसे 'वाक्य' कहते हैं। मुदाहरणके लिअे—

'पानी बहता है'

यह वाक्य है। अेक बात पूरी हो गयी। 'पानी' शब्द जिस अर्थको बताता है, अुसकी अेक क्रिया 'बहता है' होती है। प्रत्येक वाक्यमें ये दो चीजें मिलेंगी— १. कोअी प्राणी या पदार्थ और २. अुसकी कोअी हलचल, कोअी क्रिया। अिन्हीं दोनो तत्त्वोंको—

'अुद्देश्य और विधेय'

कहते हैं। किसीके सम्बन्धमें कुछ कहना-सुनना ही भाषाका प्रयोजन है। जिसके सम्बन्धमें कुछ कहा जाता है, अुसे 'अुद्देश्य' कहते हैं और जो कुछ कहा जाता है, अुसे 'विधेय' कहते हैं। वाक्य अथवा भाषामें ये ही दोनों तत्त्व मुख्य हैं। शेष सब अिन्हीं दोनोंका विस्तार हैं। यानी संसारमें मुख्यतः दोही चीजें दिखाअी देती हैं। अेक तो कोअी प्राणी या पदार्थ और दूसरी चीज अुसकी स्थिति, वृद्धि, परिक्षय या परिवर्त्तन आदिकी क्रियाअें। अनन्त प्राणी और अनन्त पदार्थ हैं। अुन सबकी अनन्त क्रियाअें हैं। अिन दोनों चीजोंमें सब कुछ आ गया। अिसी लिअे भाषा या वाक्यके मुख्य दो

ही अंश हैं—१. अुद्देश्य और २. विधेय। अिन दोनोंके वाचक शब्द ही व्याकरणके 'शब्द' हैं, जिन्हें 'पद' भी कहते हैं। अिन पदोंसे जो कुछ समझा जाता है, वह सब 'अर्थ' है। विविध 'अर्थ' पृथक्-पृथक् पदोंसे समझे जाते हैं; अिस लिअे अुन्हें 'पदार्थ' भी कहते हैं। 'जल बहता है' अेक वाक्य है। 'जल' शब्दसे अेक चीजका बोध होता है, जो 'अर्थ' है, पदार्थ है। 'बहता है' शब्दसे अुसकी गतिका बोध होता है, जिसे साधारणतः बोलचाल में 'पदार्थ' नहीं कहते; परन्तु अुस ('बहता है') पदका अर्थ 'जल' पदार्थकी गति-विशेष है। अिस लिअे 'बहता है' पद या शब्द 'सार्थक' हुआ। अिसी तरहके शब्दोंका समूह भाषा है और भाषाके अङ्ग-प्रत्यङ्ग-विश्लेषण व्याकरण।

राष्ट्रभाषा-हिन्दी

अपने देशमें 'राष्ट्रभाषा' कहनेसे 'हिन्दी' सब समझ लेते हैं;—राष्ट्रभाषाका व्याकरण—हिन्दीका व्याकरण। अिस राष्ट्रभाषाके कितनेही पुराने नाम हैं। तुलसीदास आदिने अिसे केवल 'भाषा' या 'भाखा' कहा है। अुस समय 'राष्ट्रभाषा' के अर्थमें 'भाषा' शब्द ही चलता था। मुसलमान भाअियोंने अिसके नाम 'रेखता' 'दक्खिनी' 'खड़ी बोली' आदि रखे और फिर 'हिन्दी' नाम भी अुन्होंने ही रखा। अुनका रखा 'हिन्दी' नाम सबने ग्रहण कर लिया; क्योंकि अन्वर्थ था, व्यापक और सरल था। 'हिन्द' की भाषा 'हिन्दी'। परन्तु अुन्होंने अेक विदेशी (अरबी) लिपिमें अिसे लिखना शुरू किया, जब कि दूसरे लोग अपनी ही (नागरी) लिपि काममें लाते रहे। अिस भेदको प्रकट करनेके लिअे 'अुर्दू' शब्दका व्यवहार होने लगा। मुसलमान शासकोंने 'अुर्दू' नामसे (और किञ्चित् दूसरे रूपमें) हिन्दीका प्रचार देश भरमें किया; परन्तु शासनके बलपर। लोग अरबी लिपि देखकर हिन्दीको दूसरी भाषा समझने लगे। आगे चलकर मुसलमान लेखक अुर्दूमें फारसी-अरबीके अनावश्यक शब्द भी भरने लगे और अुनका अनुशासन भी अरबी-फारसीके व्याकरणसे प्रारम्भ किया। फल यह हुआ कि अुर्दूको लोग हिन्दीसे) अेक पृथक् भाषा समझने लगे। अुर्दू-साहित्यमें भावनाअें भी कुछ

पृथक् ढंगसे व्यक्त की जाने लगी। ये ही कारण हैं, जिनसे अुर्दूको लोग अेक पृथक् भाषा समझने लगे।

पृथक् भाषा अुर्दू तब होती, जब अुसके क्रिया-पद हिन्दीसे भिन्न होते, 'सर्वनाम' भिन्न होते। किसी भी भाषामें किसी भी दूसरी भाषाके चाहे जितने शब्द कोअी भाषा किसी दूसरी भाषाके ग्रहणकर ले, या अुसमें भर दिये जायँ; सर्वनाम और क्रिया-पद कभी भी कोअी भाषा किसी दूसरी भाषाके नहीं लेती। अरबी-फारसीसे अनेक शब्द लाकर हिन्दीमें जा-बेजा भर दिये गये, अुसे अुर्दू बनानेके लिअे; परन्तु 'करता है' 'जाता है' आदि क्रियापद तथा 'तेरा' 'तुम्हारा' आदि सर्वनाम ज्योंके त्यों रहे। अिनकी जगह अरबी-फारसीके शब्द नहीं आ सके, न लाये जा सकते थे। भाषाकी जान ह, क्रियापद तथा सर्वनाम। जब कि अुर्दूमें सर्वनाम तथा क्रियापद वे ही हैं, तब वह भिन्न भाषा कैसी? हाँ, लिपि-भेद तथा विदेशी शब्दोंके अनावश्यक बाहुल्य-विकारसे अुसे हिन्दीका अेक विदेशी प्रभावसे प्रभावित रूप कहा जा सकता है।

अिसी तरह अंग्रेज शासक रोमन लिपिमें हमारी हिन्दी लिखकर अिसे 'हिन्दुस्तानी' कहा करते थे। 'हिन्दुस्तानी' में अंग्रेजीके कुछ अधिक शब्द रहा करते थे। फौजमें यह 'रोमन हिन्दुस्तानी' चलती थी। अखबार भी रोमन लिपिमें छपते थे। परन्तु यह 'हिन्दुस्तानी' क्या कुछ दूसरी भाषा थोड़े ही थी! अिसी तरह रेखता, दक्खिनी अुर्दू तथा हिन्दुस्तानी आदि राष्ट्रभाषा हिन्दीके ही नामान्तर-रूपान्तर हैं। 'हिन्दी' नामसे जो भाषा समझी जाती है, वही हमारी राष्ट्रभाषा है और अुसीका यह व्याकरण है।

नागरी-लिपि

संविधानमें यह स्पष्ट कर दिया गया है कि 'नागरी लिपिमें लिखी हिन्दी राष्ट्रभाषा है।' नागरी लिपिकी पूर्णता और वैज्ञानिकता आदिपर यहाँ कुछ नहीं कहना है। व्याकरणसे लिपि-विचार अेक पृथक् है। परन्तु यत्र-तत्र लिपिका जिक्र आयेगा; अिस लिअे यहाँ चर्चा की गयी। नागरी

लिपिमें हिन्दी ही नहीं, मराठी जैसी सुसम्पन्न प्रान्तीय भाषा भी लिखी जाती है। देशभरमें संस्कृत भाषाके लिअे भी प्रायः सर्वत्र नागरी लिपिका ही व्यवहार होता है। गुजराती तथा बँगला आदि प्रान्तीय भाषाओंके लिअे अपनी-अपनी अलग लिपियाँ हैं, जो नागरी लिपिका ही कुछ परिवर्त्तित रूप हैं। राष्ट्रभाषा (खड़ी बोली) 'कुरुजनपद' की भाषा है। अुत्तर प्रदेशके देहरादून, मुजफ्फरनगर, सहारनपुर और देहरादूनके जिले (दिल्ली जिलेके साथ मिलकर) 'कुरुजनपद' हैं। यहींकी जनता 'खड़ीबोली' बोलती है, जिसे सँवार-सँभालकर मुसलमान शासकोंने अुर्दू नामसे देशभरमें फैलाया। शेष अुत्तर प्रदेशमें 'पहाड़ी' 'बैसवाड़ी' 'अवधी' आदि अलग-अलग बोलियाँ हैं। राजस्थान, बिहार आदिकी भी अपनी-अपनी 'बोलियाँ, हैं।' मध्यप्रदेश तथा मध्यभारत आदिका भी यही हाल है। अिस अितने बड़े भू-भागने हिन्दीको ही अपनाया और अुसीको साहित्यिक भाषा बनाया। लिपि सर्वत्र नागरी ही रखी गअी। यद्यपि बिहारमें भी पृथक् लिपि बनी, जो अब तक वहाँ चल भी रही है।—'मैथिली' की भी अपनी लिपि है; परन्तु प्राधान्य नागरीका ही है और हिन्दी ही वहाँकी साहित्यिक भाषा है, जो अब राष्ट्रभाषाके रूपमें शासन-समादृत है। अुत्तर प्रदेशमें भी नागरी लिपिसे कअी लिपियाँ बनाअी गअी थीं; जिनमें कुछ लोग हिन्दी लिखते भी रहे। 'कैथी' लिपि अुनमें प्रसिद्ध है। परन्तु साहित्यमें लोगोंने नागरी ही रखी; दूसरी किसी लिपिको स्वीकार नहीं किया।

नागरी लिपिमें न जाने कितने रूपान्तर हुअे हैं। स्वर्गीय महा-महोपाध्याय पं. गौरीशंकर हीराचन्द ओझाका 'भारतीय प्राचीन लिपिमाला' नामका ग्रन्थ देखिअे। क, ग, ट आदिके पुराने रूप देखकर आप अचरज करेंगे; अितना परिवर्त्तन!

अब जो नागरीका रूप सामने है, अुसमें भी जब-तब कुछ परिवर्तन होते रहते हैं। अ, झ, ज्ञ आदि कुछ अक्षरके तो द्विरूप चल ही रहे हैं, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ आदि रूप भी विकल्प पकड़ रहे हैं। 'अि' और 'इ' दोनों रूप चल रहे हैं। 'अि' आदिका चलन पुरानी ही पद्धतिपर है। 'ओ'

तथा 'औ' देखिअे। 'ए' तथा 'ऐ' की तरह किसी समय 'ओ-औ' के लिअे भी पृथक् लिपि-संकेत जरूर रहे होंगे। किसीने सौन्दर्यके लिअे 'अ' में विभिन्न मात्राअें लगाकर नये रूप चलानेका विचार किया होगा। अुसने 'ओ' तथा 'औ' नमूनेके तौरपर चलाअे होंगे, चल गअे और अब तक चल रहे हैं। अुसी पद्धतिपर 'अि' आदि भी हैं। 'इ' तथा 'अि' दोनों रूप चल रहे हैं। कुछ समय बादमें अेक ही रूप रह जाअेगा।

कुछ लोग कहते हैं कि 'अी' लिखनेसे 'अे' हो जाअेगा, 'अ' तथा 'अी' मिलकर 'अे'। यानी 'अी' का अुच्चारण 'अे' हो जाअेगा, 'अी' न रहेगा; अिस लिअे, (वे कहते हैं'—) 'अी' ही लिखना चाहिअे। परन्तु वे जब 'ओ' लिखते हैं, तब क्यों नहीं सोचते कि 'अ' और 'ो' मिलकर 'औ' हो जाअेंगे? ये तो संकेत हैं; जिस रूपमें जिस ध्वनिका संकेत मान लिया गया, वही ठीक है। यह कोअी बहुत बड़ा हेर-फेर नहीं है कि किसीको कोअी दिक्कत हो।

सो राष्ट्रभाषाका यह व्याकरण आपके हाथोंमें है। वाक्यके खण्ड पद या 'शब्द' होते हैं और 'शब्द' का गठन वर्णों या अक्षरोंसे होता है। सुभीतेकी बात यह होगी कि पहले वर्ण, फिर पद या 'शब्द' देखे जाअें और अन्तमें 'वाक्य' पर विचार किया जाअे।

दूसरा अध्याय

अक्षर या वर्ण

शब्द या ध्वनिके अुंस रूपको 'अक्षर' कहते हैं, जो क्षर न हो, जिसके टुकड़े न हो सकें। 'हिन्दी' शब्दमें देखिअे, कितने 'अक्षर' हैं। ह् इ न् द् ई, अितने टुकड़े हुअे। अब आगे अिन टुकड़ोंके टुकड़े नहीं हो सकते। अिस लिअे ये पाँच 'अक्षर' हैं 'हिन्दी' शब्दमें। यह ध्यानमें रखिअे कि हम व्याकरण समझ रहे हैं, लिपिपर विचार नहीं कर रहे हैं। 'अ' आपने लिखा और दूसरेने मिटा दिया, या फाड़ दिया, टुकड़े कर दिअे। परन्तु हम अिस लिपि-संकेत 'अ' को अक्षर नहीं कहते हैं; प्रत्युत अैसा लिखा देखकर आप जो शब्द कण्ठ द्वारा अुच्चारण करते हैं, वह (शब्द) 'अक्षर' है, जो कानका विषय है, आँखका नहीं। अुसके टुकड़े आप नहीं कर सकते। 'अनार' के 'अ न् आ र् अ' ये पाँच खंड अधिकसे अधिक किअे जा सकते हैं। परन्तु अिनमेंसे फिर किसी भी अेकके टुकड़े नहीं किअे जा सकते। ये सब 'अक्षर' हैं। 'अक्षर' को ही 'वर्ण' भी कहते हैं। सब वर्णन-विवरण अिन्हींपर है।

नागरी-वर्णमाला

नागरी-वर्णमाला अेक वैज्ञानिक पद्धतिपर व्यवस्थित की गअी है। स्वर स्वतंत्र हैं, व्यञ्जन सहारा चाहते हैं। अिसी लिअे स्वर पहले रखे गअे हैं, व्यञ्जन बादमें। अेक व्यवस्था है। यह नहीं कि 'अे' के बाद 'बी' व्यंजन आ जाअे और 'डी' व्यञ्जनके बाद फिर 'अी' स्वर। 'अलिफ' के बाद 'बे' और फिर स्वर, फिर व्यंजन। अैसी खिचड़ी यहाँ नहीं है। स्वरोंमें भी बीचकी व्यवस्था है। व्यञ्जनोंका वर्गीकरण अुच्चारणके आधारपर किया गया है। कुछ वर्णोंको 'अूष्म' तथा 'अन्तस्थ' नाम देकर अुनका पृथक् श्रेणी-विभाजन किया गया है। अेक-अेक ध्वनिके लिअे अेक-अेक पृथक् लिपि-संकेत है और अेक लिपि-संकेत अेक ही निश्चित ध्वनि प्रकट करता है। यही स्पष्टताका कारण है।

वर्ण-सन्धि

कभी-कभी दो वर्ण मिलकर अेक नअे रूपमें प्रकट होते हैं। अिस मिलन-रूपको व्याकरणमें 'सन्धि' कहते हैं। कभी-कभी सन्धि अितनी पक्की हो जाती है कि लोग पृथक्‌रूपता भूल ही जाते हैं। हमारी वर्णमालाके कुछ स्वर-व्यञ्जन मूल हैं और कुछ सन्धि-रूप हैं। परन्तु अिन सन्धि-रूपोंके लिअे भी लिपिमें पृथक् संकेत हैं। रूप पृथक् है, तब संकेत पृथक् होना ही चाहिअे।

स्वरोंमें अ, अि, अु, ऋ, ये चार मूल अक्षर हैं। आ, ई, ऊ, ॠ अिनके दीर्घ रूप हैं। 'अ' को ही कुछ खींचकर बोल देना 'आ' है। अिसी तरह 'ई-ऊ' भी हैं। 'ॠ' का तो हिन्दीमें कभी काम ही नहीं पड़ता। सो, मूल स्वर चार हुअे।

ए, ऐ, ओ, औ; ये चार 'संयुक्त स्वर' हैं, सन्धि होकर बने हैं। अ+अि=अे, अ+ए=ऐ, अ+अु=ओ, अ+ओ=औ। अिन संयुक्त स्वरोंका भाषामें अत्यधिक अुपयोग है; अिस लिअे अिनकी पृथक् अपनी सत्ता है और पृथक् गणना भी होती है।

'ऋ' को हिन्दी भाषाने केवल संस्कृत तत्सम (ऋण, ऋतु आदि) शब्दोंके लिअे अपनी वर्णमालामें रखा। ठेठ हिन्दीके किसी शब्दमें अिस (ऋ) का प्रयोग नहीं होता। ङ, ञ तथा ण का भी यही हाल है। संस्कृत (तत्सम) शब्दोंके लिअे ही ये भी हैं—वाङ्मय, वाञ्छा, कारण आदि। ठेठ हिन्दीके किसी शब्दमें अिनका काम नहीं पड़ता। तद्भव शब्दोंमें भी अिनका प्रयोग नहीं होता। व्रजभाषा तथा अवधी आदिमें तद्भव शब्द ही चलते हैं—रितु, रिन, कारन आदि।

'ऋ' का असली अुच्चारण ?

हमारी वर्णमालामें अेक 'ऋ' ही कदाचित् अैसा लिपि-संकेत है, जिसकी असली ध्वनि हम भूल गअे हैं। हिन्दीमें 'ऋ' का अुच्चारण 'रि' जैसा होता है; परन्तु यह सही नहीं। 'रि' स्वर, नहीं है, 'अि' की मात्राके

साथ अेक व्यंजन है। कोअी भी स्वर (अ, अि, अु, ए, ऐ, ओ, औ) किसी भी व्यञ्जन वर्णसे बन नहीं सकता। बन जाअे, तब फिर 'स्वर' कैसा? स्वर-स्वयं राजते। अुसकी अपनी स्वतंत्र सत्ता है। 'ऋ' का 'रि' अुच्चारण करते हैं, तो अुसमें वास्तविक स्वरत्व नहीं रहता। महाराष्ट्र बन्धु 'ऋ' का अुच्चारण बहुत कुछ 'रु' जैसा करते हैं। अिसमें भी वही विप्रतिपत्ति है। तब फिर 'ऋ' का असली, शुद्ध अुच्चारण है क्या? हमें पता नहीं। हम भूल गअे।

फिर भी अपने पुरातन साहित्यके साथ अविच्छेद्य सम्बन्ध होनेके कारण वर्णमालामें 'ऋ' का रखना जरूरी है। अिसके बिना कभी-कभी तो अर्थ ही समझमें न आअेगा। 'रितु' तो समझमें आ जाअेगा; परन्तु 'ऋता' को 'रिता' या 'रीता' कर देनेसे क्या समझमें आअेगा? श्री आर. अेस. पण्डितने अपनी अेक पुत्रीका नाम 'ऋता' रखा— 'ऋतं च सत्य च' मंत्रके आधार पर। अंग्रेजी अखबारोंने 'ऋता' को 'RITA' छापा। हिन्दी-पत्रोंने 'रिता' या 'रीता' कर दिया। 'रिता' का कोअी मतलब नहीं, न 'रीता' का ही। 'रिक्त' का तद्भव रूप 'रीता' होता है— शून्य, खाली। कहाँ 'ऋता' कहाँ 'रीता'! और 'रीता' पुल्लिंग है— रीता बर्तन, रीती थाली। क्या हुआ? क्या रहा? अिसी तरहकी असंख्य गड़बड़ें सामने आअेंगी। अिसी लिअे, प्रकृत अुच्चारण न जाने क्या था, यह जानते हुअे भी, हमें 'ऋ' अपनी वर्णमालामें रहने देना है।

व्यञ्जनोंमें भी दो भेद—मूल और संयुक्त

स्वरोंकी तरह व्यञ्जनोंमें भी दो भेद हैं— मूल और संयुक्त। संयुक्त व्यंजन तो 'त्र' 'त्य' 'न्न' आदि न जाने कितने हैं। अिन सबकी चर्चा यहाँ नहीं की जायगी। चर्चा अुन संयुक्त व्यंजनोंकी है, जिनमें 'सन्धि' हो गअी और अुस सन्धिके कारण अुनमें अैसी अेक रूपता आ गयी है कि सहसा अुनके पार्थक्यपर किसीका ध्यान भी नहीं जाता। अिन सन्धिकृत रूपोंने अपनी अैसी पृथक् सत्ता जमा ली है कि वर्णमालामें अिनके लिये पृथक्-पृथक् लिपि-संकेत रखने पड़े हैं।

वर्गोंके प्रथम तथा तृतीय वर्णमूल व्यंजन हैं और 'ऊष्म' तथा 'अन्तस्थ' मूल भी हैं—

मूल व्यञ्जन

क च ट त प तथा ग ज ड द ब

और

य र ल व तथा श ष स ह

ये मूल व्यंजन हैं। वर्गीय प्रथम तथा द्वितीय वर्णोंके साथ 'ह' मिलकर अुन ध्वनियोंकी सृष्टि करता है, जिन्हें प्रकट करनेके लिये नागरी वर्णमालामें

ख छ ठ थ फ तथा घ झ ढ ध भ

लिपि-संकेत रखे गये हैं।

'अल्पप्राण' और 'महाप्राण'

अुच्चारण-स्थानके अनुसार व्यंजनोंका जो वर्गीकरण हुआ है, अुससे 'पचीसा' अेक पृथक् बन गया है, जिसे संस्कृत-व्याकरणमें 'स्पर्श' कहते हैं—'कादयो मावसानाः स्पर्शाः'– 'क' से लेकर 'म' पर्यन्त पचीस वर्ण 'स्पर्श' कहलाते हैं। यद्यपि स्थान-साम्य अन्य वर्णोंका भी है; जैसे—

क ख ग घ ङ के साथ

'अ' 'ह' तथा विसर्ग भी कण्ठस्थानीय हैं। परन्तु 'कवर्ग' में 'अ' तथा 'ह' को नहीं रखा गया। अिसका कारण यह है कि स्थान अेक होनेपर भी 'अन्तस्थ' (य र ल व) तथा 'ऊष्म' (श ष स ह) कुछ पार्थक्य रखते हैं, अिसी लिअे पाँच-पाँच वर्णोंका अेक-अेक 'वर्ग' वर्णमालामें रखा गया है–

क, ख, ग घ ङ	कवर्ग—कण्ठस्थान
च छ ज झ ञ	चवर्ग—तालु-स्थान
ट ठ ड ढ ण	टवर्ग—मूर्द्धा-स्थान
त थ द ध न	तवर्ग—दन्त-स्थान
प फ ब भ म	पवर्ग—ओष्ठ-स्थान

कैसी सुन्दर फौजी टुकड़ियाँसी हैं। अिनके साथ अ, ह विसर्ग तथा इ श आदि भी रख दिये जाते, तो कहीं किसी पंक्तिमें आठ और किसीमें सात वर्ण बैठते ! अच्छा न लगता। सच बात तो यह है कि स्थान मिल जानेपर भी 'अन्तस्थ' तथा 'ऊष्म' वर्ण अपने-अपने अुच्चारणमें कुछ विशेषता रखते हैं। यही पृथक् स्थितिका कारण है। अिसके विपरीत अल्पप्राण क च ट त प के साथ महाप्राण ख छ ठ थ झ मजेसे जमे बैठे हैं। ग ज ड द ब के साथ बलवान् (महाप्राण) घ झ ढ घ भ जमे हैं। 'अल्पप्राण' वह, जिसमें शक्ति कम हो, जान कम हो, आवाज अूँची न हो। अेक 'महाप्राण' 'अल्पप्राण' को भी महाप्राण बना देता है। 'ह्' महाप्राण अैसा है कि जिस अल्पप्राण स्पर्श-वर्णके साथ बैठ जाता है, अुसे ही 'महाप्राण' बना देता है। ग ज ड द ब को देखिअे; कैसे लगते हैं ? पर 'ह्' के साथ महाप्राणता देखिअे– घ झ ढ घ भ। य र ल व ये चारो 'अन्तस्थ' वर्ण भी अल्पप्राण है; परन्तु अुन्हें 'ह्' वैसा प्रभावित नहीं करता है। कहीं-कहीं 'ल' के साथ मिलकर कुछ जोर दे देता है। 'आल' की अपेक्षा 'आल्ह' में जोर है। परन्तु तो भी, अिन दोनोंमें वह अेकरूपता नहीं आ सकती, जो 'घ-ध' आदिमें देखी जाती है। अिसी लिअे पञ्च वर्गोंमें अिन्हें नहीं रखा गया।

श, ष स तथा ह ये चारों वर्ण 'ऊष्म' कहलाते हैं। जिसमें कुछ गरमी होगी वही जोरसे बोलेगा। सच पूछिये तो 'ह' का साथ करनेसे ही ये शेष तीनों वर्ण महाप्राण हो गये हैं। असली महाप्राण 'ह' है। 'स' प्रायः 'ह' हो जाया करता है और हिन्दीमें 'श' तथा 'ष' को 'स' रूप प्राप्त होता है—दश–'दस' और षष्टि—'साठ'। यों यह 'ह' की बिरादरी है। काव्य आदिमें जहाँ कोमल वर्णन काममें लाने होते हैं, अल्पप्राण वर्णके शब्द अधिक रखे जाते हैं और भयंकर वर्णनमें महाप्राण— 'नाथ भूधराकार सरीरा'। 'भूधराकार' की जगह 'पर्वताकार' अुतना अच्छा न रहता; क्योंकि

वर्ग—विभाजनमें अल्पप्राणके साथ अल्पप्राण और महाप्राण रखे जा सकते थे—

क ग ख घ ङ

अिस तरह। परन्तु अुच्चारणमें वह सुखकर न रहता। 'क' के अनन्तर ख ही अच्छा लगता है; क्योंकि यह 'क' का ही महाप्राणरूप है। अिसी तरह 'ग' के बाद 'घ' भला लगता है। दूसरे रूपमें 'ह' का सहयोग भर बढ़ गया है। अिसी लिअे अुस क्रमकी अवस्थिति है। पाणिनिने अपने चौदह मुख्य या आधारभूत सूत्रोंमें वर्ण-समान्नाय अल्पप्राण तथा महाप्राण रूपसे विभक्त करके यों रखा है— क च ट त प, ख ध ठ थ फ, ग ज ड द ब, घ या ठ घ थ। स्वर पहले रखे हैं। अन्तस्थ तथा अूष्म अलग रखे हैं। वर्णोंके आरम्भमें अन्तस्थ और अन्तमें 'अूष्म' स्वर सबके सब 'अल्पप्राण' हैं।

अनुनासिक व्यंजन

वर्गीय पञ्चम वर्ण 'अनुनासिक' कहलाते हैं; क्योंकि अिनके अुच्चारणमें नासिकाका योग अनिवार्य है। ङ ञ ण अिनके अुच्चारणमें कण्ठ, तालु तथा मूर्द्धाके साथ-साथ नासिकाको काममें लाना पड़ता है। अिसी लिअे ये 'अनुनासिक वर्ण' कहलाते हैं। हिन्दीमें 'न' तथा 'म' का ही व्यापक प्रयोग है। संस्कृत तत्सम शब्दोंके लिअे ही शेष तीन अनुनासिक वर्ण हिन्दी स्वीकार करती है। यद्यपि अनुनासिक वर्ण यों तो द्विस्थानीय हैं; परन्तु फिर भी 'घ' आदिकी तरह 'संहत-संयुक्त नहीं कहे जा सकते। संयुक्त अिस लिअे नहीं कह सकते; क्योंकि अिनका वैसा विश्लेषण नहीं हो सकता। घ=ग+ह की तरह 'ङ' आदिका विश्लेषण नहीं हो सकता। अनुनासिककी पृथक् कल्पना कर भी ली जाय और अुसे विशेष चिह्नसे प्रकट भी कर दिया जाय, तो भी शेष बचे हुअे पाँच निरनुनासिक वर्ण कहाँ हैं? ग् ह से मिलकर 'घ' हुआ। पर यह नहीं बताया जा सकता कि अमुक वर्णोंको अनुनासिकका सहयोग मिलकर ङ ञ ण न म रूप प्राप्त हो गया। अिसी लिअे 'क' की तरह 'ङ' भी मूल वर्ण हैं, संयुक्त नहीं। ञ ण न म भी मूल वर्ण हैं। अनुस्वारकी तरह अनुनासिक पृथक सत्ता नहीं रखता। 'अं' कहनेसे 'अ' के

अनन्तर अनुस्वार श्रुत है। परन्तु 'अँ' 'आँ' में वह बात नहीं। स्वरही अनुनासिक है। अिसके विपरीत 'अं' में ऊपर अनुस्वार है। अिसीलिये स्वर दो तरहके कहे गये हैं—अनुनासिक और अननुनासिक। अनुनासिक स्वर प्रकट करनेके लिये (ँ) चिह्न दे देते हैं; पर दीर्घ स्वर केवल बिन्दु (—) से भी अनुनासिक प्रकट होता है।

अनुस्वार और विसर्ग

अिन ध्वनियोंको संस्कृत-व्याकरणमें पृथक् वर्ण नहीं माना गया है; क्योंकि अिनकी वर्णोंकी-सी सत्ता ही नहीं है। व्यञ्जन वर्ण स्वरोंसे पहले आते हैं; ये तीनों वैसे नहीं हैं। अनुस्वार और विसर्ग स्वरके बाद आते हैं। अनुनासिक अेकदम स्वरके साथ रहता है। अनुस्वारका अुच्चारण प्रायः 'ङ' जैसा होता है। 'कंकण' का अुच्चारण 'कङ्कण' जैसे होता है। अिसीलिये संस्कृत-व्याकरणमें अुपर्युक्त दोनों रूप विकल्पसे स्वीकृत हैं। अिसी तरह 'किंकिणि' तथा 'किङ्किणि' का अेक-सा अुच्चारण है। अन्य सभी स्वरोंपर भी अैसा ही समझिये। स्पष्ट है कि स्वरके अनन्तर अनुस्वारकी स्थिति है।

परन्तु अनुनासिककी स्थिति अैसी नहीं। यह स्वरमें ओतप्रोत होता है और अिसीलिये बादमें आनेकी कोअी बात ही नहीं। 'अनुस्वार' तो स्पष्ट ही 'अनुस्वर' है—स्वरके पश्चात् श्रुत है। अिसीलिये अिसका नाम वैसा है। 'अनुस्वर' ही 'अनुस्वार है। अनुनासिक अैसा नहीं है। 'अंगद' या 'अंगुलि' को 'अङ्गद' तथा 'अङ्गुलि' बोलते हैं—स्वरके अनन्तर अनुस्वार। परन्तु 'अँगूठी' 'अँगड़ाअी' आदिमें अनुनासिक 'अ' के साथ-साथ अुच्चरित होता है। अिसीलिअे संस्कृत-व्याकरणमें स्वरोंके दो भेद माने हैं—अनुनासिक और निरनुनासिक। 'सानुनासिक' नहीं। 'अं' सानुस्वार है; पर 'अँ' अनुनासिक है। यह अिस लिअे कि अनुनासिककी पृथक् (आगे-पीछे) श्रुति नहीं, स्वरके साथ-साथ है। अिसी तरह व्यंजन भी सानुनासिक और निरनुनासिक भेदसे दो तरहके हैं। वर्गीय पंचमाक्षर सानुनासिक हैं, शेष सब निरनुनासिक। आप कह सकते हैं कि 'जहँ जहँ चरन परैं सन्तनके, तहँ-तहँ बंटाढार' यहाँ 'बंटा' में तो अनुस्वार है; परन्तु 'हँ' 'हँ' तथा

हाँ' यों तीन जगह सानुनासिक हकार है और 'जाँबाज ही करते हैं कुछ काम, यहाँ 'जाँ' तथा 'हैं' सानुनासिक हैं; तब केवल वर्गोंके पंचमाक्षारोंको ही सानुनासिक क्यों कहा जाता है? अुत्तरमें अितना कहा जा सकता है कि स्वर सानुनासिक कहे गअे हैं। सो हँ, हाँ जाँ आदिमें स्वर मात्र सानुनासिक हैं, 'ह' आदिसे कोअी मतलब नहीं। परन्तु कोअी व्यंजन जब सानुनासिक स्वर लेमिलता है, तब वैसा ही जान पड़ता है। वस्तुतः अनुनासिक, अनुस्वार तथा विसर्ग केवल स्वरोंसे सम्बन्ध रखते हैं, व्यंजनसे नहीं, जो व्यंजन अनुनासिक हैं--ञ म ण न ङ; वे तो हैं ही।

हिन्दीने अपनी (नागरी) वर्णमालामें विसर्ग संस्कृत तत्सम शब्दोंके लिये ही रखे हैं-प्रायः, दुःख आदिमें काम पडता है। ठेठ हिन्दी शब्दोंमें कहीं भी विसर्गोंकी जरूरत नहीं। 'छः' में लोग गलत विसर्ग प्रयोग करते हैं। शुद्ध शब्द है-'छह'। तभी तो 'छहो' बनता है; जैसे 'तीन' तथा 'चार' से तीनो-चारों। विसर्गोंका और 'इ' का अुच्चारण प्रायः मिलता-जुलता है। अिसी अुच्चारण-सादृश्यसे लोग 'इ' की जगह विसर्ग देने लगे। कोअी समय अैसा भी आया था, जब नागरी अंक, और अक्षर 'हिन्दीभाषी' क्षेत्रोंमें अेकमात्र अुसी वर्गके सहारे दिन काटने लगे थे, जो संस्कृतके 'पण्डित' थे। बाकीके सब अरबी लिपि, कैथी लिपि और अुड़िया लिपि लिखते थे। संस्कृतके वे 'पण्डित' विसर्गोंके अभ्यस्त थे ही; 'छह' को भी 'छः' लिखने लगे! अुनका यह स्खलन अब तक चला जा रहा है। अिसी तरह 'छिः' प्रत्यय विसर्गोंसे गलत लिखा जाता है। शुद्ध है— 'छि' या 'छी'। छी छी! तुम्हें अैसा करना था।"

'छी' का अितिहास भी देखिये। नफरत प्रकट करनेके लिये यह आता है। छोटे बच्चेको टट्टी फिराते समय माताअें ओठोंसे अेक 'शी' की खिंची हुअी लम्बी ध्वनि करती हैं। यह ध्वनि बच्चोंको अितनी अभ्यस्त हो जाती है कि वे अिसे सुनते ही टट्टी-पेशाब करनेको अुद्यत हो जाते हैं। जब कुछ बड़े होते हैं, कुछ-कुछ बोलने लगते हैं, तब 'शी शी' को 'छी छी' कह कर कहते हैं— 'माँ, मैं छी छी कल लूँ?' आगे टट्टी [पुरीष] को ही माताअें 'छी छी' कहने लगीं— 'अुधर मत जा, छी छी पड़ी है।

पुरीष [छी छी] सभीके लिये घिनौनी चीज है, जुगुप्सक है। आगे चलकर 'छी छी' नफरत प्रकट करनेके लिये अेक प्रत्ययके रूपमें चल पड़ी— 'छी छी ! यह काम तो बहुत बुरा।' अिसीको फिर 'छि छि' लिखने लगे, और आगे—'छः' के अनुकरण पर विसर्ग देने लगे— 'छिः छिः'। वस्तुतः किसी भी हिन्दीके अपने शब्दमें विसर्ग नहीं लगते, न संस्कृतके तद्भव शब्दोंमें ही।

वर्णोंका अुच्चारण

अुच्चारण तो सुननेसे आता है और काल-भेदसे या स्थान-भेदसे कुछ अन्तर भी पड़ जाता है। परन्तु जहाँ तक हो सके, अुच्चारणमें अेकरूपता ही रहनी चाहिये; अन्यथा सुनने-समझनेमें भी कठिनाअी पड़ सकती है। हिन्दी तो अैसी सरल भाषा है कि अुच्चारण-वैषम्य होनेपर भी अेक-दूसरेकी बात मजेसे लोग सुन-समझ लेते हैं, परन्तु अन्य भाषाओंमें अुच्चारण-वैषम्य कठिनाअी पैदा कर देता है।

स्वरोंके अुच्चारणमें अ, आ, अि, अी, अु, अू, ये सर्वत्र प्रायः समान हैं; परन्तु संयुक्त स्वर (अे, अै, ओ, औ) के अुच्चारणोंमें अन्तर आ जाता है। हिन्दीमें 'अै' का अुच्चारण प्रायः 'अय्' जैसा होता है—'अैसा आदमी'। परन्तु दक्षिण भारतमें 'अैका' अुच्चारण 'अअी' जैसा होता है। 'अैसा आदमी' को बोलते हैं—'अअीसा आदमी'। अुत्तर प्रदेशके पूरबी भाग में भी 'अै' को प्रायः 'अअी' जैसा ही बोलते हैं, अपनी बोलीमें। 'अैसा' की खड़ी पाअी वहाँ नहीं है। यह तो 'खड़ी बोली' की चीज़ है, कुछ जनपदका विकास है। वहाँ 'अैस' रह जाता है, जो बोलनेमें 'अअीस' जैसा कुछ अुच्चरित होता है। अवधीमें 'अे' तथा 'ओ' का बहुत हलका अुच्चारण होता है, जिसके लिये नागरी लिपिमें कोअी पृथक् संकेत नहीं। अभ्यासवश ही ठीक अुच्चारण लोग करते हैं—'कामरूपकेहि कारण आया' में 'के' का 'अे' बहुत हलके रूपमें अुच्चरित है, जिसे वे नहीं समझ सकते, जो अवधी से परिचित नहीं। 'और करै अपराध कोउ' में 'कोउ' का 'ओ' भी वैसा ही लघु अुच्चरित है—'कोअी' के 'को' में जैसा 'ओ' है, वैसा यह नहीं।

परन्तु अिन अुच्चारणोंके लिये लिपिमें कोअी पृथक संकेत नहीं, न ये अुच्चारण बदले ही जा सकते हैं। काम चल रहा है। जो अवधी जानते हैं, वे पृथक् संकेतके बिना भी यथास्थान ठीक अुच्चारण कर लेते हैं और जो नहीं जानते, अुन्हें अिस छोटी-सी पुस्तकको अुच्चारण-शिक्षणसे भर देनेपर भी कुछ पता न चलेगा।

पर यह सब अुच्चारण-भेद अितना कम है कि हिन्दीवालोंको कोअी दिक्कत नहीं मालूम होती। अितने बड़े देशमें स्थान-भेदसे कुछ न कुछ अुच्चारण-भेद तो रहेगा ही। अेक ही 'जल' शब्द बोलनेमें, अुत्तर प्रदेशमें, बंगालमें कितना अन्तर है? यदि कोअी बंगाली 'जल' में 'ज' के 'अ' का अुच्चारण अपने ढंगपर करे और बोले--'हम सब लोग जोल पीते हैं, तो क्या कोअी अनहोनी है? वहाँ 'अ' का अुच्चारण 'ओ' जैसा ही तो नहीं, पर अिससे मिलता-जुलता होता है और अुसके लिये लिपि-चिह्न 'अ' का ही परिवर्तित रूप है, कुछ और नहीं। वे संस्कृत भी 'नमस्कृत्य सरस्वतीम्' को 'नोमस्कृत्य सोरस्सतीम्' अैसा कुछ बोलते हैं, संस्कृतके महान पण्डित भी। परन्तु लिखते वैसा ही हैं, जैसा हम। अुनकी संस्कृत हम मजेसे समझते हैं। हिन्दी शब्दोंका अुच्चारण भी प्रान्त-भेदसे बदल सकता है; परन्तु जहाँ तक हो सके, अुच्चारण साम्यपर ध्यान रखना चाहिये।

लिखावटमें वर्णोंका अुच्चारण यथाक्रम प्रायः होता है और यही कारण है कि नागरी लिपिमें लिखी जानेवाली (संस्कृत, मराठी, हिन्दी आदि) भाषाओंमें शब्दोंकी वर्ण-विन्यास (जोडनी) सिखानेकी वैसी जरूरत नहीं पडती। अंग्रेजी-अुर्दू आदिमें भाषा-दोष या लिपि-दोषसे गड़बड पड़ती है और तब वर्ण-विन्यास सिखाना पडता है। यहाँ तो 'पड़ता है, का वर्ण-विन्यास सीधा 'प-ड़-ता-है' साफ है।

संयुक्त अक्षरोंमें भी वर्णोंके विन्यासके अनुसार अुच्चारण होता है और वर्धा-पद्धतिमें तो और भी अधिक स्पष्टता है।

'र्' के अुच्चारणमें अितना समझिअे कि जब यह स्वरके बाद आता है, तब अगले व्यंजनके अूपर जाता है। स्वर प्रबल है। अपने

साथीको ऊपर ले जाता है, अगले व्यञ्जनके सिरपर—'निर्मल' 'दोर्दण्ड' 'ऊर्मिल'। इ, ओ तथा ऊ के बाद अुच्चरित 'र्' अगले व्यञ्जनोंके सिर-पर चढ गया है। परन्तु जब र् किसी व्यंजनके बाद आता है, तब यह अगले अक्षरके चरणोंमें रहता है। जो स्वय दूसरेके सहारे है, वह ('व्यञ्जन') किसी दूसरेको ऊँचा कैसे अुठाएगा? 'नम्र' 'अुग्र' 'व्रण' यहाँ म् ज् तथा व् के बाद 'र्' अुच्चरित है और अिसलिअे सर्वत्र 'अ' के सहारे अुन वर्णोंके चरणोंमें पड़ा है। 'नर्म' में ऊपर' है, क्योंकि स्वर ('अ') पीछेसे अुसे अुठा रहा है।

सन्धि-प्रकरण

सन्धि-प्रकरण भी वर्णोंसे सम्बन्ध रखनेवाली चीज़ है। दो वर्णोंमें सन्धि होती है, दो 'शब्दों' या पदोंमें नहीं। सम्भव है, वे वर्ण किसी भी शब्दोंके अंग न हों, जैसे घ, झ, ढ, भ में देख चुके हैं। सम्भव है, अेक ही पदमें दो वर्णोंकी सन्धि हों; जैसे पढ+इ=पढ़े। यह भी सम्भव है कि वे वर्ण भिन्न-भिन्न पदोंके हों; जैसे–कब+ही=कभी। सन्धि सदा वर्णोंमें होगी, 'शब्दों' में नहीं।

हिन्दीके व्याकरणोंमें प्रायः संस्कृतकी ही सन्धियाँ समझाअी जाती हैं, जो साधारणतः यहाँ चालू हैं—गणेश, अुमेश, ब्रह्मर्षि आदि समझनेमें जिनकी जरूरत पड़ती है। हिन्दीकी अपनी भी कुछ सन्धियाँ हैं, जो संस्कृत-सन्धियोंकी ही पद्धति पर प्रायः अवलम्बित हैं। अिनका जानना जरूरी है; नहीं तो हिन्दीका सही स्वरूप ही समझमें न आअेगा। 'गणेश' या 'प्रत्युपकार' आदिमें जो सन्धियाँ हैं, वे स्पष्ट ही हैं। अिसलिअे, अुनका पिष्ट-पेषण न करके हम हिन्दीकी कुछ सन्धियाँ यहाँ देंगे।

१—स्वर-सन्धि

स्वर-सन्धि हिन्दीमें संस्कृतकी ही तरह है। 'इ' से परे कोअी 'इ' या 'ई' हो, तो दोनोंको मिलकर 'दीर्घ अेकादेश' हो जाता है।

'किया' पुल्लिङ्ग क्रियाका स्त्री लिङ्ग रूप बनानेके लिअे 'आ' को 'ई' कर दिया, जैसा कि नियम है। रूप हो गया 'कि य् ई'। अब 'य्' का लोप हो गया; अिसलिअे कि 'ई' सामने है। य् की और 'ई' का अेक ही स्थान है, दोनों 'सवर्ण' हैं। परन्तु स्वर प्रबल होता है, व्यञ्जन अुसके आश्रित रहता है। सवर्ण स्वर (अपने वर्णके) व्यंजनको अेकदम दबा देता है, अुसका अस्तित्व ही मिटा देता है। अस्तित्व तो रहता है; पर लोगोंको अुसका प्रत्यक्ष दर्शन नहीं होता। अेक कड़ाह भर पानीमें अेक लोटा लाल पानी मिला दो, लालिमाका कहीं पता न चलेगा और अेक लोटा लाल रंगके जलमें चुल्लू भर साफ जल मिला दो, सब लाल! अुस कड़ाहमें लाल रंगके परमाणु अदृश्य हो गअे हैं, आपके देखनेमें नहीं आते पर हैं वहाँ। अणुवीक्षण यंत्रके सहारे देखे जा सकते हैं। अिसी तरह लुप्त वर्ण भी व्याकरणसे देखा जाता है। सो, 'ई' ने 'य्' को आत्मसात् कर लिया। य् का लोप हो गया, व्याकरणकी भाषामें। तब रूप रह गया 'कि ई'। दोनोंमें दीर्घ-अेकादेश हो गया—'की'। अिसी तरह 'पिया' से 'पी' और 'लिया' से 'ली'।

यह 'दीर्घ-अेकादेशका' अुदाहरण हुआ

हिन्दी अपने शब्दोंमें 'अि' को 'य्' आदि नहीं करती, परे स्वर होनेका कारण मान कर। 'किया' का बहुवचन बनानेके लिए 'आ' को 'ए' कर दिया। 'ए' में भी 'अि' की सत्ता है; अ+अि='ए'। 'ए' में 'अि' जो घुली-मिली है, वह 'य्' को स्पष्ट दिखाअी दे रही है। अिसीलिए लोप! अि, अी तथा ए के साथ 'य' की स्पष्ट श्रुति है ही नहीं। अिसीलिये 'य्' का लोप हो जाता है। 'यथाश्रुत' का यह प्रभाव है। जिसकी कोअी आवाज ही नहीं, अुसे कौन लादे फिरे! अिसीलिए संस्कृतमें भी 'हरयिह' का 'हरअिह' हो जाता है। 'यि' में य का भावण ही नहीं; तब लोप। परन्तु अयादेशसे वह प्रमाण प्राप्त है; अिसलिए रह भी सकता है— 'हरयिह'

अैसा भी। विकल्पसे दोनो रूप। अिसी तरह 'कि य् अे' होनेपर 'य्' का लोप हो गया— 'किए'। 'अि' को कुछ न हुआ। न लोप करो, तो 'किये' सही। अिसी तरह 'गअी– गयी' ये विकल्पसे रूप।

परन्तु हिन्दीकी परम्परा लोपके ही पक्षमें है। सूर, तुलसी, कबीर, रसखान आदिने गअी, आए, सोए आदि ही प्रयोग किये हैं; गयी, आये, सोये नहीं। यह भी नहीं कहा जा सकता कि 'गया' का स्त्रीलिङ्ग रूप 'गयी' रखनेपर ही मालूम हो कि यह 'गया' का रूप है। कोअी भी 'गअी' देखकर समझ लेगा कि यह 'गया' का स्त्रीलिङ्ग रूप है और य् का लोप है। यदि अैसा नहीं, तो 'की' 'पी' आदिमें कैसे पता लग जाता है कि ये 'किया' 'पिया'—के स्त्रीलिङ्ग रूप हैं? फिर भी हम 'गयी'– 'गये' आदि लिखनेका विरोध नहीं कर रहे हैं। वैसा लिखना गलत नहीं कहा जा सकता। परन्तु भाषामें यदि अेकरूपता लानी है, तब 'गअी– गअे' ही ठीक हैं; यह बात आगे स्पष्ट हो जाएगी।

वर्ण-लोप भी हिंदीमें होता है— व्यंजन-लोप भी और स्वर-लोप भी। 'अिसी मासमें' यहाँ 'अिसी' शब्दकी व्युत्पत्ति 'अिस + ही =' अिसी' है। 'स' के 'अ' का लोप और 'अि' का लोप। 'स' मिला आगेकी 'ही' में 'अिसी'। अिसी तरह 'किसी' आदि हैं।

प्रत्यय 'अे' परे हो, तो प्रकृतिके 'अ' का लोप हो जाता है— टिकट + अे = टिकटें। 'अें' स्त्रीलिङ्ग बहुवचन विभक्ति है। रेलें, बहनें, लाअिनें आदिमें 'अ' का लोप है। अन्यत्र लोप नहीं होता— माताअें, लताअें, बहुअें आदि।

२—'अिय' तथा 'अुव्'

सन्धि-प्रकरणमें 'अिय्' तथा 'अुव्' का अुल्लेख करना बहुत जरूरी है। हिन्दीकी यह खास चीज है और अिससे हिंदी बहुत सरल हो गई है। संस्कृतमें 'श्री' का 'श्रियः' तथा 'भ्रू' का 'भ्रुवः' रूप होता है—'अी'

को 'अिय्' तथा 'ऊ' को 'अुव' अिसी पद्धतिपर हिंदीमें अपने 'अिय्' और 'अुव्' हैं। नीचे कुछ अुदाहरण लीजिए।

यदि 'को' 'ने' 'से' जैसी कोअी विभक्ति सामने न हो, तो स्त्रीलिङ्ग अकारान्त शब्दोंके बहुवचनमें 'अें' संश्लिष्ट विभक्ति सामने आती है और तब प्रकृतिके अन्त्य स्वरका लोप हो जाता है, यह आप देख चुके हैं--बहनें, रेलें आदिमें। यदि अन्य स्वर परे हो,तब लोप न होगा--लताअें, माताअें, बहुअें, गौअें, आदि।

परन्तु अिकारान्त तथा ईकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दोंसे परे बहुवचनमें 'ओं' संश्लिष्ट विभक्ति आती है, यदि सामने 'को' 'ने' आदि कोअी विभक्ति न हो। और, यहीं प्रकृतिकी 'अि' तथा 'अी' को 'अिय' होता है।

'नदी' से 'ओं' प्रत्यय किया। 'अी' को 'अिय' हो गया--न द् अिय् ओं। द् मिला आगेकी 'अि' में और य् मिला प्रत्यय ('ओं') में--'नदियाँ'।

अिसी तरह रीति + ओं = रीतियाँ
प्रति + ओं = प्रतियाँ
घडी + ओं = घड़ियाँ
रानी + ओं = रानियाँ
कठिनाअी + ओं = कठिनाअियाँ।
पगडी + ओं = पगड़ियाँ।
शहनाअी + ओं = शहनाअियाँ।

और-- छुट्टियाँ, धोतियाँ, चूड़ियाँ आदि।

३--'ओं' विकरणमें 'अिय'-'अुव'

हिंदी कारकोंका अेकवचन बनानेमें तो सीधे विभक्ति लगा दो, कविने, रामसे, नदीको आदि। कोअी झंझट नहीं झंझट बहुवचनमें पड़ती है; अिस 'ओं' (ं) विकरणकी जानकारी न होनेसे।

संज्ञा या सर्वनाम या बहुवचन

जब हिन्दीमें किसी भी संज्ञा या सर्वनामका बहुवचन बनाना हो, और सामने कोअी विभक्ति (ने, को, से आदि) हो, तो प्रकृति और प्रत्ययके बीचमें 'ओं' विकरण आ जाता है। प्रकृति और प्रत्ययके बीचमें आनेवाले वर्णको 'विकरण' कहते हैं। यह 'ओं' विकरण सदा आता है, बहुवचन बनानेमें, जब कि कोअी विभक्ति सामने हो। स्त्रीलिङ्ग, पुल्लिङ्ग और अकारान्त-अिकारान्त आदि सभी जगह।

अकारान्त स्त्रीलिङ्ग या पुल्लिङ्ग संज्ञासे परे यदि 'ओं' हो, तो प्रकृतिके अन्त्य स्वरका लोप हो जाता है—

बालकको,	बालक+ओंको=बालकोंको
बहनको,	बहन+ओंको=बहनोंको

यदि संस्कृत तत्सम आकारान्त शब्दसे परे 'ओं' हो, तब लोप नहीं होता—

पिताको,	पिताओंको
माताको,	माताओंको

अिसी तरह 'गौओं'को रहेगा। परन्तु अिकारान्त, या अीकारान्त संज्ञासे परे 'ओं' हो, तो अुस 'अि' या 'अी' को 'अिय्' हो जाता है:—

कविको,	कवियोंको।	कठिनाअीमें,	कठिनाअियोंमें।
नदीसे,	नदियोंसे।	सभाअीसे,	सभाअियोंसे।
विधिमें,	विधियोंमें।	सहेलीने,	सहेलियोंने।

यह सब कारक-विवेचनमें विस्तारसे मिलेगा। यहाँ तो 'अि' को 'अिय्' आदेश बताने-भरके लिये है।

अिसी तरह 'अु' या 'ऊ' को 'अुव्' होता है, 'ओं' परे होनेपर। परन्तु 'अु' में 'व्' की स्पष्ट श्रुति नहीं होती; अिसलिये लोप हो जाता है। 'ओ' में 'अु' विद्यमान है; अिसलिए 'अुव' का 'व' अुड जाता है:—

प्रभुको,	प्रभुओंको।	बहूको,	बहुओंको।
साधुको,	साधुओंको।	बधूको	बधुओंको।

संक्षेप यह कि हिन्दीमें 'अिय्' तथा 'अुव्' का विशेष स्थान है; अिसलिये सन्धि-प्रकरणमें अिसकी चर्चा की गअी।

४—वर्णका आगम

स्वर-सन्धि तथा व्यञ्जन-सन्धिकी अन्यान्य बातोंके साथ-साथ कहीं वर्णका 'आगम' भी हिन्दीमें होता है। धातुओंसे प्रार्थनार्थक अेक 'अिए' प्रत्यय भावप्रधान होता है और रूप बनते हैं— बैठिअे, अुठिअे, पढ़िअे आदि। यानी 'अिए' प्रत्यय परे हो, तो अकारान्त धातुके अन्त्य ('अ') का लोप हो जाता है। अन्यत्र 'सोअिये'-लोप नहीं। कहीं प्रकृत्यन्त स्वर ह्रस्व हो जाता है— 'छुअिये'।

परन्तु अेकस्वर धातुओंसे परे यह 'अि अे' आअे, तो 'अि' और 'ए' के बीचमें अेक 'जि' का आगम हो जाता है, 'अि' सहित 'ज' आ जाता है– लीजिअे, दीजिअे, पीजिअे। व्युत्पत्ति यों—

ले+अिए। अि जि अे। ले+अि+जि+अे=लीजिअे। 'ले' के 'अे' का लोप और 'अि' को दीर्घत्व-लीजिअे। अिसी तरह 'दे' के 'अे' का लोप। 'दीजिअे'। 'पी' तथा 'अि' में सवर्ण दीर्घ-अेकादेश-पीजिअे। 'कीजिअे' में 'कर' के 'अर' मात्रका लोप और 'अि' को दीर्घत्व, कीजिअे। प्रत्यय 'अिए' है; अिस लिअे 'पढ़िये' आदि रूप गलत हैं।

अिस तरह हिन्दीमें अपनी कुछ विशिष्ट सन्धियाँ हैं। 'चारों' में भी सन्धि है। 'चार हू' है। 'ह' का लोप। 'अ' तथा 'अू' की 'ओ' सन्धि। अवधीमें 'चारौ' होता है।

विदेशी शब्दोंका अुच्चारण

नागरी-लिपिमें विदेशी शब्दोंके अनेक वर्णोंका तद्रूप अुच्चारण बतानेके लिअे कुछ पृथक् संकेत बनाअे गअे हैं। 'बाजार' 'जायका' आदि

विदेशी शब्द हमारी भाषामें चलते हैं; अपने गलेकी सहज ध्वनिके अनुसार हम लोगोंके गलेमें वैसी खड़खड़ाहट नहीं है। अिसलिअे 'बाजार' आदि शब्दोंका 'जा' अुसी तरह बोला जाता है, जैसे कि 'जाति' का 'जा'। अिसी तरह 'फायदा' का 'फा' अुसी तरह अुच्चरित होता है जैसे संस्कृत 'कफ' का 'फ'। यानी तद्रूप या तत्सम अुच्चारण नहीं, तद्भव-रूपका अुच्चारण जन-गृहीत है। परन्तु जब कोअी अुर्दू-फारसीका शेर नागरी लिपिमें अुध्दृत करना हो, तो आवश्यकतानुसार 'ज' 'क' 'फ' आदिके नीचे बिन्दी लगाकर तद्रूप विदेशी ध्वनि प्रकट की जाती है।

अिसी तरह अंग्रेजीके 'कालेज' आदि शब्द हिन्दीमें चलते हैं, अपने सहज अुच्चारणमें। परन्तु यदि अंग्रेजीका वाक्य नागरी लिपिमें लिखना हो; या किसीके अुच्चारणकी अनुकृति प्रकट करनी हो, तब विशेष चिह्नका अुपयोग किया जाता है; जैसे कि—तब अुसने अंग्रेजीमें कहा–'नाअु, आअी अेम गोअिंग टू द कॉलेज।' या लड़केने कहा–'हम कॉलेज क्यों जाअें?'

अन्यत्र अैसे चिह्नोंका प्रयोग करना भाषाको विकृत करना है।

स्वाध्याय :—

१—अक्षर किसे कहते हैं ?
२—नागरी वर्ण मालाकी वैज्ञानिक पद्धति क्या है ?
३—अल्प प्राण और महाप्राण व्यजन कौन है ?
४—सधि कहाँपर होती है ?
५—संज्ञा या सर्वनामका बहुवचन कैसे बनता है ?
६—नीचे लिखे शब्दोंके बहुवचन बनाअिये—
ग्राहक, नाटक, सती, पति, सखी, अलि, असुविधा, कलम, परीक्षा।

तीसरा अध्याय

शब्दोंका श्रेणी-विभाजन

पहले कहा जा चुका है कि सार्थक शब्दोंका समूह ही भाषा है। अिन सार्थक शब्दोंको दो मुख्य भेदोंमें विभक्त किया जा सकता है—१—नाम और २—धातु। किसी भी प्राणी, वस्तु, भाव आदिके वाचक शब्दको 'नाम' कहते हैं। राम, वेद, हिन्दू, हिंदी, ज्ञान, मूर्खता आदि शब्द 'नाम' हैं। नामोंको ही हिन्दी-व्याकरणोंमें 'संज्ञा' कहते हैं। संस्कृत-व्याकरणमें तथा यास्कके 'निरुक्त' आदिमें 'नाम' शब्द ही मिलता है। संज्ञाकी अपेक्षा 'नाम' ही अधिक अच्छा है; क्योंकि 'सर्वनाम' से भी मेल मिल जाता है—'नाम' और 'सर्वनाम'। जो (तू, मैं, वह आदि) सबके नाम बन जाए, सभी नामोंकी जगह ले लें, वे 'सर्वनाम'। परन्तु 'संज्ञा' शब्द व्याकरणोंमें चल पड़ा है, तो अिस पुस्तकमें भी अुसीका व्यवहार चलने दीजिए। किसीके वाचक शब्दको, नामको, 'संज्ञा' कहते हैं। अुस नाम या संज्ञासे जिसका बोध होता है, अुसकी किसी भी क्रिया (खाना, पीना, अुठना, बैठना, सूखना, जीना, मरना आदि) को बतलानेवाले शब्दोंको 'क्रियावाचक' कहते हैं। 'राम पढ़ता है' में 'राम' संज्ञा है और वह जो कुछ कर रहा है, अुसका वाचक शब्द यहाँ 'पढ़ता है' अितना है। 'पढ़ता' और 'है' मिलकर अेक क्रियावाचक 'पद' है, जिसे 'शब्द' भी कहते हैं। क्रियावाचक शब्दोंको संक्षेपमें 'क्रियाशब्द' या केवल 'क्रिया' भी कह देते हैं। वस्तुतः 'क्रियात्व' शब्दगत नहीं है। अिसी तरह 'रा' और 'म' वर्णोंसे बना यह शब्द अुस क्रियाको नहीं कर रहा है; प्रत्युत वह पुरुष अुस क्रियाका कर्ता है, जिसका बोध अिस नामसे होता है। यही बात अन्य कारकोंके सम्बन्धमें भी है। परन्तु व्याकरणमें तो हम शब्दोंपर ही विचार करते हैं; अिसलिए शब्दगत व्यवहार यहाँ मुख्य है।

सम्पूर्ण शब्द-समूह दो मुख्य भागोंमें बाँटा जा सकता है, नाम और क्रिया। क्रिया-शब्द जिन मूल शब्दोंसे बनते हैं, उन्हें 'धातु' कहते हैं। इन दोनों शब्द-विभागोंको प्रयोगके अनुसार 'उद्देश्य' तथा 'विधेय' कहते हैं। शेष (विशेषण, प्रत्यय, क्रिया-विशेषण आदि) इन्हीं दोनों तत्त्वोंका विस्तार है। यह सब आगे स्पष्ट होगा।

स्वकीय और परकीय शब्द

कोई भी भाषा अपनी इतनी पूँजी रखती है कि सब काम चला सके। जैसे-जैसे काम बढ़ता जाता है, पूँजी (शब्द-संख्या) भी बढ़ती जाती है, भाषा स्वतः समृद्ध होती जाती है।

परन्तु कभी-कभी परकीय-शब्द भी भाषा-ग्रहण करती है। एक भाषाके शब्द दूसरी भाषामें जाकर मिलते रहते हैं। हिन्दीने भी दूसरी भाषा के शब्द लिए हैं और हिन्दीके भी शब्द दूसरी भाषाओंमें गए हैं। परन्तु अनावश्यक शब्द कोई भी भाषा किसी दूसरी भाषासे नहीं लेती। जो शब्द लेती है, उन्हें अपनी प्रकृतिसे मिला लेती है। इसीलिए दूसरी भाषासे लिए गए शब्दोंका एक भेद 'तद्भव' श्रेणीका है।

ध्यान रखनेकी बात है कि कोई भी भाषा कभी भी किसी दूसरी भाषासे क्रिया-शब्द, सर्वनाम और विभक्तियाँ नहीं लेती। 'राम पढ़ता हैं' को 'राम पठति' नहीं कर सकते। 'राम पढ़ता है' को 'रामः पढ़ता है' नहीं कहा जा सकता और 'रामकी बालिका पढ़ती है' को 'रामस्य बालिका पढ़ती है', भी नहीं कहा जा सकता। फारसी-अरबीकी क्रियाएँ हिन्दीमें नहीं रखी जा सकीं; शेष सब तरहके शब्द भर दिए गए और इसीलिये वह भाषा जनतासे दूर पड़कर एक विचित्र भाषा बन गई। 'अंजुमन-ए-तरक्की-ए-उर्दू' में यह 'ए' विभक्ति इस देशकी नहीं; इसीलिये सब नहीं समझ सकते। परन्तु ऐसी विभक्ति भी (उर्दूमें) अनेक शब्दोंको एकमें मिलाकर कोई एक नाम आदि बनानेके काममें ही लाई जा सकती है,

अन्यत्र नहीं। उर्दूमें भी 'रामके लड़केका कुसूर नहीं है' यों 'का' का प्रयोग अनिवार्य है; क्योंकि वह हिन्दीका ही अेक रूप है।

'तत्सम' और 'तद्भव' शब्द

जब कोअी भाषा किसी दूसरी भाषाके शब्द स्वकीय शब्द-राशिमें मिलती है, तो अपनी प्रकृतिका ध्यान रखती है। 'कोट', 'बटन' आदि शब्दोंकी बनावट-उच्चारण हिन्दीकी प्रकृतिके अनुकूल हैं; अिसलिए अिन्हें ज्यों-का-त्यों ले लिया; कोअी काट-छाँट नहीं की। अैसे तद्रूप शब्दोंको 'तत्सम' कहते हैं।

जो शब्द भाषाकी प्रकृतिसे मेल नहीं खाते, अुन्हें कुछ परिवर्तित करके ग्रहण किया जाता है। 'लैन्टर्न' तथा 'हॉस्पिटल' आदि शब्द हिन्दी-प्रकृतिके अनुकूल नहीं पड़े। अिन शब्दोंका तद्रूप अुच्चारण अैसा है, जो हिन्दीभाषी जनताके अुच्चारणके लिये सुगम नहीं। अिसीलिए अिन शब्दोंको कुछ खराश-तराशके साथ लिया गया। 'हिन्दीमें लालटेन' तथा 'अस्पताल' शब्द काम में आते हैं। अब ये हिन्दी शब्दोंके मेल बन गए।

अिसी तरह अंग्रेजी, फारसी, अरबी आदिके शब्द हिन्दीने लिए हैं, कुछ 'तत्सम' और कुछ 'तद्भव'।

संस्कृतकी बात अन्य भाषाओंसे भिन्न है। संस्कृतसे तो हिन्दी अनुप्राणित ही है। वही तो अुत्स है, अुसीसे जीवन है। संस्कृतके 'सूर्य'-जैसे तत्सम शब्द भी हिन्दीमें चलते हैं और 'सूरज'-जैसे तद्भव शब्द का भी यथास्थान प्रयोग होता है। जहाँ जरूरत पड़ती है, हिन्दी संस्कृत की ही ओर देखती है। जनभाषामें 'वाङ्मय' या 'साहित्य' का पर्य्याय कहाँ है? संस्कृतसे ले लिया। अरबसे 'अदब' लाकर चलाअे, अिसकी जरूरत नहीं। न हम 'लिटरेचर' ही ले सकते हैं। अुर्दूमें 'अदब' और 'हिन्दुस्तानी' में 'लिटरेचर' को जगह है। 'मल्लाह' शब्द नाविकके लिए प्रचलित है; परन्तु

लाक्षणिक प्रयोगमें हिन्दी 'मल्लाह' नहीं, संस्कृतका 'कर्णधार' शब्द लेती है—'देशके वे कर्णधार हैं'। अुर्दूमें 'मल्लाह' तथा 'कर्णधार'की जगह विदेशी 'नाखुदा' चलता है। बस, यही हिन्दीमें और अुर्दू-हिन्दुस्तानीमें अन्तर है।

शब्दोंके यौगिक, रूढ तथा योगरूढ नामके तीन भेद आप जानते ही हैं; अिसलिये अुनका अुल्लेख करना व्यर्थ है।

पुल्लिङ्ग-स्त्रीलिङ्ग

शब्दोंकी बनावट या आकृतिके अनुसार भी श्रेणी-विभाजन है। आकृतिसे पहचान होती है। कुछ शब्द अैसे हैं, जिनकी आकृति पुमान् (पुरुष) की तरह है, अैसे सब शब्द 'पुल्लिङ्ग' कहलाते हैं। राम, गोविन्द, बालक आदिकी तरह जिनकी आकृति है, वे सब वृक्ष, पर्वत, सागर, मेघ आदि शब्द पुल्लिङ्ग हैं। अिसी तरह हरि, कवि आदिकी तरह जिनकी आकृति है, वे 'गिरि' आदि सभी शब्द पुल्लिङ्ग हैं। गुरु-प्रभु आदिकी तरह 'भानु' आदि पुल्लिङ्ग हैं।

रमा आदि स्त्रीवाचक शब्दोंकी तरह जिनकी आकृति है, वे लता, द्राक्षा, मदिरा आदि सभी स्त्रीलिङ्ग शब्द। सावित्री आदि शब्दोंकी तरह नदी, सरस्वती आदि स्त्री-लिङ्ग।

संस्कृतमें 'नपुंसक लिङ्ग' नामकी भी अेक तीसरी शब्द-श्रेणी है। जिन शब्दोंकी बनावट अूपर लिखी दोनों श्रेणियोंसे भिन्न दिखाअी दी, वे सब 'नपुंसक लिङ्ग' कहे गअे। 'रामः' की तरह 'पर्वतः' पुल्लिङ्ग और 'रमा' की तरह 'लता' स्त्रीलिङ्ग; परन्तु 'जलम्' कहाँ जाअे? तब यह तीसरी श्रेणी-'नपुंसक लिङ्ग'। हिन्दीमें 'जलम्' होता नहीं है; 'राम' और 'पर्वत' की तरह 'जल' रहता है। अिसलिअे नपुंसक लिङ्गका यहाँ बखेड़ा ही नहीं। सभी शब्द दो श्रेणियोंमें ही विभक्त हैं—१-पुल्लिंग और २-स्त्रीलिंग।

संस्कृतके सभी पुल्लिंग शब्द हिन्दीमें भी प्रायः पुल्लिंग ही हैं। संस्कृतके स्त्रीलिंग शब्द यहाँ भी स्त्रीलिंग हैं और संस्कृतके नपुंसक लिंग शब्द (जल, वन, पुष्प, कमल आदि) हिन्दीमें प्रायः पुल्लिंग हैं। 'प्रायः' सर्वत्र समझिए! कारण, संस्कृतका नपुंसक 'पुस्तक' अुर्दूके 'किताब'– वाले डिब्बेमें है! नपुंसकको हिन्दी प्रायः पुल्लिंग बनाती है; पर अुर्दूके प्रभावसे 'पुस्तक' का झुकाव स्त्रीत्वकी ओर हो गया। अिसी तरह 'अग्नि' पुल्लिंग शब्दका तद्भव शब्द 'आग' स्त्रीके रूपमें चलता है। पर अैसे अपवाद बहुत कम हैं।

हिन्दीके अपने शब्द

अूपर संस्कृत शब्दोंकी हिन्दीमें लिंग-व्यवस्था बताअी गअी। परंतु हिन्दीके 'अपने' तथा संस्कृतसे आअे हुअे तद्भव शब्दोंका क्या हाल है; सो भी देखिये।

संस्कृतमें 'रामः' का पुल्लिंग है विसर्ग। विसर्गका विकास हिन्दीने 'आ' (ा) के रूपमें किया है। कैसे विकास हुआ, यह सब हिन्दी-निरुक्त में पढ़नेकी चीज है। यहाँ अितना समझ लीजिये कि अिस स्थलके विसर्गोंका विकास करके हिन्दीने 'आ' (ा) विभक्ति अपनी पृथक् बना ली। अिसी खड़ी पाअीके कारण अिसे 'खड़ी बोली' भी कहते हैं। संस्कृतके विसर्गोंका विकास करके भी यह पुंविभक्ति (ा) हिन्दी संस्कृत (तत्सम) शब्दोंमें नहीं लगाती; 'अपने' शब्दोंमें, या फिर संस्कृतसे आए हुअे तद्भव शब्दोंमें ही लगाती है। 'अुसे दण्ड सहना पड़ा' में 'दण्ड' तत्सम है। हिन्दीकी पुंविभक्ति यहाँ कभी भी न लगेगी। परन्तु अिस शब्दके तद्भव रूपमें वह विभक्ति लग जायगी— 'डंडा'। यह संश्लिष्ट विभक्ति है— 'पुंप्रत्यय' समझिए।

सो, हिन्दीके 'अपने' या संस्कृतसे आये हुअे तद्भव वे सभी शब्द पुल्लिंग हैं, जिनके अन्तमें यह पुंप्रत्यय दिखायी देता है—कंडा, पंडा, अंडा,

बंका, टेढा, सीधा आदि। अिसी तरह खट्टा, मीठा, चटपटा आदि विशेषण ढलेंगे। अिसी तरह कृदन्त क्रियाअें—आता-जाता, खाया-पिया, अुठा-बैठा आदि पुंप्रत्ययसे पुल्लिंग हैं। समस्त— 'सतनजा' 'अिकतारा' आदिमें तथा 'पहला' 'दूसरा' 'तीसरा' आदि तद्धित-शब्दोंमें भी यही है।

पुंप्रत्ययान्त शब्दको स्त्रीलिंग बनाना हो, तो 'आ' (ा) को 'ी' (ी) कर देते हैं। यह प्रक्रिया विशेषणोंमें तथा क्रियाओंमें व्यापक रूपसे देख सकते हैं—खट्टी, मीठी, चटपटी और 'आती-जाती' 'आअी-गअी' (या 'आयी-गयी') आदि।

यों हिन्दीके (पुल्लिंग तथा स्त्रीलिंग रूपमें) शब्दोंकी व्यवस्था है।

संस्कृतके तत्सम शब्दोंके सम्बन्धमें अूपर कहा ही जा चुका है। 'पुरुष' की तरह 'गज' आदि तथा 'वृक्ष' आदि सभी हैं ही; विचार, संचार, वेद, अुद्गम आदि (संस्कृतके सभी पुल्लिंग) यहाँ भी पुल्लिंग हैं। संस्कृतके पठन, पाठन, अध्ययन, लेखन आदि नपुंसक लिंग यहाँ पुल्लिंग हैं और अपने पुंप्रत्ययान्त पढना, पढाना, लिखना, बोलना आदि तो पुल्लिंग हैं ही।

संस्कृतके विचारना, धारना, जिज्ञासा आदि स्त्रीलिंग शब्द यहाँ भी स्त्रीलिंग हैं।

अिस तरह हिन्दीमें शब्दोंके पुल्लिंग-स्त्रीलिंगका विषय स्पष्ट है।

स्वाध्याय :—

१—भाषासे क्या तात्पर्य है ?

२—तत्सम और तद्भव शब्दोमें अन्तर क्या है ?

३—दूसरी भाषासे शब्द ग्रहण करनेका तरीका क्या है ?

४—हिन्दीमे सस्कृतके नपुसक शब्दोका प्रयोग किस लिङ्गमें किया गया ?

५—हिन्दी-व्याकरणमें कितने प्रकारके लिग है ?

६—नीचे लिखे शब्दोके लिग बताअिये—

किताब, तालाब, बाजार, नदी, पानी, रानी, आग, सलाह।

चौथा अध्याय

संज्ञा, विभक्तियाँ और अुनका अुपयोग

भाषामें 'नाम' तथा 'धातु' भी पूरा काम नहीं कर सकते, जबतक अुन्हें विभक्तियोंका सहारा न मिले। विभक्तियाँ अेक तरहके प्रत्यय ही हैं, जो संज्ञा, सर्वनाम तथा धातुओंमें काम आती हैं। 'राम गोविन्द देखता है' कहनेसे पूरा मतलब न निकलेगा; क्योंकि दोनोंके आँखें हैं, दोनों देख सकते हैं। कौन किसे देखता है? क्या दोनों किसी औरको देखते हैं? पर वहाँ तो 'देखते हैं' भी नहीं है। 'देखता है' अेकवचन है। अिस भ्रमको मिटानेके लिये 'को' विभक्ति काममें आयेगी। 'को' विभक्तिसे भ्रम मिट जायगा—'रामको गोविन्द देखता है'—कर्ता 'गोविन्द' स्पष्ट हुआ। 'राम गोविन्दको देखता है'—यहाँ कर्ता 'राम' स्पष्ट हुआ। 'को' से 'कर्म' का निर्देश हो गया। जहाँ जरूरत नहीं, 'को' का प्रयोग भी नहीं। 'राम कागज देखता है' या 'कागज राम देखता है' जैसे स्थलोंमें 'को' की जरूरत नहीं; क्योंकि 'कागज' के आँखें ही नहीं हैं कि 'देखना' क्रिया का कर्तृ-भ्रम सम्भावित हो। 'मैं लड़का देखता हूँ' यहाँ भी 'को' नहीं है; अिसलिये कि 'हूँ' से कर्ता 'मैं' स्पष्ट है। 'लड़केने लड़का देखा' में 'ने' विभक्तिसे कर्तृत्व स्पष्ट है; अिसलिये 'को' के बिना काम चल गया। बस, अिसी तरह वहाँ विभक्ति-प्रयोग होता है, जहाँ अुसकी जरूरत होती है।

संज्ञा-विभक्तियोंके हिन्दीमें दो भेद हैं—१. संश्लिष्ट और २. विश्लिष्ट।

संश्लिष्ट विभक्तियाँ

संश्लिष्ट विभक्तियाँ ये हैं—अि, आँ, अें, र, न और ओ।

'अि' विभक्ति 'को' की जगह विकल्पसे कुछ सर्वनामोंमें लगती है—अिसे-अिसको, अुसे-अुसको, किसे-किसको। यह विभक्ति सामने

आती है, तो यह, वह, कौन, जो; इन सर्वनामोंको इस, उस, किस तथा जिस 'आदेश' हो जाता है। 'अ' तथा 'इ' मिलकर 'ए' बन जाते हैं—इस, उसे आदि। 'मैं' को 'मुझ' और 'तू' को 'तुझ' हो जाता है—मुझे-तुझे 'तुम' के 'म्' तथा 'अ' के बीच में 'ह्' का आगम हो जाता है—'तुम्हें' बहुवचनके लिये अनुनासिकत्व है। 'म' की तरह दूसरे अनुनासिक वर्ण 'न' में भी व्यञ्जन तथा स्वरके मध्य 'ह्' आता है—'उन्हें'–उनको। इसी तरह 'इन्हें'–इनको। 'किन्हें'-'जिन्हें' इसी तरह हैं। 'हमें' में 'ह्' का आगम नहीं हुआ; इसलिये कि इस माँद में केवल महाप्राण ('ह') पहले हीसे बैठा है, तब दूसरा कैसे आये ?

'आँ' विभक्ति इकारान्त तथा ईकारान्त संज्ञाओंको बहुवचन बनानेमें काम आती है, जब कि (उन संज्ञाओंके आगे) कोई विश्लिष्ट विभक्ति (को, ने, से आदि) न हो। 'आँ' परे हो, तो प्रकृतिके स्वरको (इ या ई को) 'इय्' हो जाता है। तब प्रकृतिका व्यञ्जन प्रत्ययके 'इ' में आ मिलता है और 'य्' आगे प्रत्ययके 'आँ' से जा मिलता है—नदी–नदियाँ, धोती–धोतियाँ, विधि–विधियाँ, गाड़ी–गाड़ियाँ, कठिनाई–कठिनाइयाँ, आदि।

'एँ' विभक्ति (इकारान्त तथा ईकारान्त संज्ञाओंके अतिरिक्त) शेष सभी स्त्रीलिंग संज्ञाओंका बहुवचन बनाती है; यदि सामने कोई विश्लिष्ट विभक्ति ('ने' 'को' 'से' आदि) न हो।

'एँ' विभक्ति परे हो, तो अकारान्त संज्ञाओंके 'अ' का लोप हो जाता है— बहन-बहनें, धोबिन-धोबिनें, रेल-रेलें, मेज-मेजें आदि।

अन्यत्र 'एँ' स्पष्ट है ही– लता-लताएँ, बहू-बहुएँ, क्रिया-क्रियाएँ, गौ गौएँ आदि।

'र' संश्लिष्ट विभक्ति सम्बन्ध सूचनके लिये है। पुल्लिंगमें इसके आगे पुंविभक्ति लग जाती है, तब 'रा' रूप हो जाता है 'र' केवल कुछ

सर्वनामोंमें लगती है। तेरा, मेरा, तुम्हारा-हमारा। 'तू' को 'ते' तथा 'मैं' को 'मे' आदेश।

बहुवचनमें पुंविभक्ति 'ए' हो जाती है और स्त्रीलिंगमें 'ओ'— तेरे, मेरे, हमारे कपड़े। तेरी, मेरी, तुम्हारी, हमारी, मातृभूमि। 'न' का प्रयोग स्वकीयता-वाचक 'आप' में होता है और 'आप' को 'अप' हो जाता है– अपना घर, अपने कपड़े, अपनी धोती।

'ओ' विभक्ति सभी तरहकी संज्ञाओंका बहुवचन-संबोधन बनाती है—

बालक-बालको, लड़के-लडको, बेटी-बेटियो, विद्वन् या विद्वान्-विद्वानो, बहन-बहनो आदि। अकारान्त संज्ञाओंका अन्त्य-लोप, आकारान्त तद्भवोंके अन्त्यका लोप भी– 'लड़को'। अन्त्य अि-अी को 'अिम्'– कवियो, लड़कियो!

विश्लिष्ट विभाक्तियाँ

विश्लिष्ट विभक्तियाँ हैं—ने, को, से, में, पर तथा 'क'।

किसी भी संज्ञा-सर्वनाममें अिनका प्रयोग करनेपर कोअी परिवर्तन प्रकृतिमें नहीं होता, यदि अेकवचन विवक्षित हो— रामने, लड़कीने, पितासे-मातासे, गंगापर-सरस्वतीपर, नदमें-नदीमें आदि।

यदि बहुवचन विवक्षित हो, तो प्रकृतिके और अिन विभक्तियोंके बीचमें अेक विकरण 'ओं' (ों) आ जाता है। सामने विकरण होनेपर अकारान्त तथा आकारान्त संज्ञा-सर्वनामोंके अन्त्य स्वर ('अ' या 'आ') का लोप हो जाता है--

बालकोंने, घरोंसे, बापदादोंकी, डंडोंसे, पंडोंको आदि। परन्तु तत्सम आकारान्त संज्ञाओंका अन्त्य-लोप नहीं होता है:--

माताओंको, राजाओंने, लताओंपर आदि। सर्वनामोंमें 'सब' का 'सबोंने' होता है; पर अन्यत्र (तुमको, अुनको, अिनको आदिमें) विकरण ही नहीं आता, तब लोप क्या हो ?

यदि संज्ञाअें अीकारान्त या अिकारान्त हैं, तो अन्त्यको 'अिय' हो जाता है:--

नदियोंमें, विधियोंपर, गाड़ियोंसे, कवियोंने, धोबियोंको, आदि।

अुकारान्त या ऊकारान्त संज्ञा हो, तो अन्त्य स्वरको 'अुव्' हो जाता है; परन्तु विकरण 'ों' में जबर्दस्त सवर्ण 'अु' भी विद्यमान है; अिसलिये 'व्' का लोप हो जाता है:---

बहूको-बहुओंको, गुरुको-गुरुओंको, बाबूको-बाबुओंको। अिसी तरह बहुओंसे, बाबुओंने आदि समझिये।

अिस तरह विभक्तियोंका प्रयोग अेकवचनमें तथा बहुवचनमें बहुत स्पष्ट तथा सरल है। अिसके लिये 'रूप-साधन' में पृथक् अधिक लिखनेकी आवश्यकता नहीं है।

विभक्तियोंसे कारक आदिकी व्यंजना

अिन विभक्तियोंसे कारक आदिकी व्यंजना की जाती है; यह पहले कह आये हैं। अिनमेंसे केवल 'ने' विभक्ति ही अैसी है, जो अेकमात्र कर्ता-कारकमें लगती है और सो भी, केवल भूतकालमें जब कि क्रिया कर्मवाच्य या भाववाच्य हो। अन्यत्र कहीं अिस (ने) का प्रयोग नहीं होता। 'में' तथा 'पर' भी अधिकरण-कारकमें ही आता हैं। जब 'भीतर' का अर्थ विवक्षित हो, तो 'में' आती है--'सन्दूकमें कपड़े हैं', 'घरमें अन्न भरा है'। परन्तु जब 'अूपर' विवक्षित हो, तब 'पर' का प्रयोग होता है--'सन्दूकपर कपड़ा रखा है', 'मेजपर पुस्तक है'। 'चौकमें सभा होगी', 'मेलेमें चोर आये हैं', अित्यादि प्रयोगोंमें भी 'भीतर' विवक्षित है। चौककी अेक सीमा

है, अुसके भीतर। मेलेका भी अेक दायरा है, अुसके भीतर। वैषयिक अधिकरणमें दोनोंका प्रयोग वैकल्पिक है—'अीश्वरमें अुसका विश्वास नहीं है', 'भगवान्‌पर विश्वास रखो' अित्यादि।

'ने' का प्रयोग— 'रामने पुस्तक पढ़ी', 'तुमने हमको देखा' आदि समझिअे। 'वाच्य' प्रकरणमें अिसका अधिक खुलासा किया जायगा। यहाँ अितना समझ लें कि केवल कर्ता-कारकमें, भूतकालमें 'ने' का अुपयोग होता है, जब कि क्रिया कर्म-वाच्य या भाववाच्य हो।

परन्तु 'को' और 'से' विभक्तियाँ विभिन्न कारकोंमें प्रयुक्त होती हैं। अुदाहरणार्थ 'को' का कुछ कार्य-क्षेत्र देखिअे—

१–'राम सबको देखता है'। 'को' कर्म-कारकमें है।

२–'रामको, हमको, तुमको, सभीको अभी बहुत काम करना है' यहाँ सर्वत्र 'को' कर्ता-कारकमें है और क्रियाकी अनिवार्यता या अवश्य-कर्तव्यता प्रकट होती है।

३–'तुम मोहनको वह पुस्तक दे दोगे न ?' यहाँ सम्प्रदान-कारकमें 'को' है।

४–'रातको नौ बजे अेक सभा होगी' यहाँ अधिकरणमें 'को' है। तात्पर्य है—रातमें नौ बजे।

अिसी तरह 'से' विभक्तिसे भी अनेक कारकोंका बोध होता है–

१–'हिमालयसे गंगा निकलती है' यहाँ 'से' से आपादान कारक प्रकट है।

२–'अब तो मुझसे न अुठा जाता है, न बैठा जाता है' यहाँ 'से' कर्ता-कारकमें है। कर्ताकी क्रिया-निष्पादनमें असमर्थता प्रकट है।

३–'मैं तुमसे अेक बात कहता हूँ', यहाँ 'गौण कर्म' में 'से' का प्रयोग है। क्रिया द्विकर्मक है। मुख्य कर्म 'बात' है। अैसी जगह गौण कर्ममें 'से' लगती है।

प्रेरणामें सभी सकर्मक क्रियाएँ द्विकर्मक हो जाती हैं; क्योंकि असली कर्ताका प्रयोग 'कर्म' की तरह होता है, जिसे 'गौण कर्म' कहते हैं। हिन्दीमें गौण कर्म 'से' विभक्तिके साथ आता है–

क– तू रामसे चिट्ठी लिखा रहा था।

ख– मा अब लड़कीसे ही सब काम कराती है।

ग– लड़कियोंने सब काम अपनी अुस सहेलीसे ही करा लिया।

वस्तुतः 'से' विभक्तिसे युक्त असली कर्ताको प्रेरणामें 'गौण कर्म' के बदले 'गौण करण' कहा जाअे, तो अधिक अच्छा; क्योंकि करण कारकमें 'से' का प्रयोग होता ही है और प्रेरित कर्ता वस्तुतः 'प्रेरक' का अेक तरहका साधन ही तो है। मुख्य साधन तो 'लिखने' आदिके हैं, 'कलम' आदि। वे (कलम आदि) ही वस्तुतः करण हैं। परन्तु अर्थ-सादृश्यसे 'प्रेरित' कर्ताको अैसे स्थलपर 'गौण करण' कहा जा सकता है–कलमसे चिट्ठी लिखी जाती है और रामसे चिट्ठी लिखाअी जा रही है। यह सब क्रिया-प्रकरणमें अधिक स्पष्ट किया जायेगा।

जब कोअी काम करानेकी बात न हो, तब (प्रेरणामें) असली या 'प्रेरित' कर्ताको 'गौण कर्म' ही कहेंगे और अुसमें 'को' विभक्ति लगेगी। शरीरसे सम्बन्ध रखनेवाली खाना, पीना, अुठना, बैठना जागना आदिकी प्रेरणामें असली कर्ता 'को' विभक्तिके साथ आता है और तब अुसे 'गौण कर्म' कहते हैं–

"यशोदा कृष्णको माखन खिला रही है।" 'माखन' असली कर्म और 'कृष्ण' गौण कर्म; क्योंकि वे तो खा रहे हैं। अिसी तरह–

१–माँ बच्चेको सुला रही है

२–बच्चा माँ को जगा रहा है

३–तू मुझे क्यों जगाता है ('को' की जगह 'ह')

४–वह अूँटको बैठा रहा है

५–'तू चाकूसे कलम बनाता है', यहाँ करण-कारकमें 'से' का प्रयोग है।

६–'मैं रामसे कुछ भी छिपाता नहीं। यहाँ अेक विशेष प्रयोजनके लिए 'से' का प्रयोग है। जिससे कुछ छिपाना-न छिपाना हो, अुसके साथ 'से' लगता है। लाभ, हानि, प्रयोजन आदिका जिससे सम्बन्ध हो, अुसके साथ भी 'से' लगता है—**अुससे** क्या हानि, क्या लाभ ?

सम्बन्ध

सम्बन्ध प्रकट करनेके लिए 'क' ('का') 'न' (ना) तथा 'र' ('रा') का प्रयोग होता हैं। सम्बन्धीके अनुसार अेक वचन, बहुवचन या स्त्रीलिंग-पुल्लिंगका प्रयोग होता है; यह भी कहा गया—

रामका घोड़ा रामके घोड़े, रामकी गौ।

यह 'र' तथा 'क' वस्तुतः तद्धित प्रत्यय जान पड़ते हैं, जिनका प्रयोग संज्ञा-विभक्तिकी तरह होने लगा। संस्कृतमें– 'भवदीयः पुत्रः' और 'भवदीया बालिका' होता है– आपका लड़का, आपकी लड़की। 'पुत्रः' के साथ 'ईय': और बालिकाके साथ 'इयाः' बहुवचनमें भी सम्बन्धीके अनुसार– 'भवदीयाः पुत्राः' 'आपके लड़के' होता है। अिसी तरह तुम्हारा, 'तुम्हारे' और 'तुम्हारी' समझिए। किसी तात्त्विक विभक्तिमें कोअी परिवर्तन नहीं होता—ने, को, में आदि सदा अेक रूप रहती हैं।

कालान्तरमें 'क' को प्रकृतिसे पृथक् करके भी प्रयुक्त करने लगे। परन्तु 'र' संश्लिष्ट ही रहा।

'क' तथा 'र' में पुंविभक्ति या पुंप्रत्यय ('ा') लगता है, तब सभी काम वैसे ही होते हैं– बहुवचनमें 'ए,' लड़के– तुम्हारे, रामके। लड़की, तुम्हारी, रामकी। 'को' आदि विभक्ति परे हो, तब भी, अेकवचनमें भी, पुं-प्रत्यय 'ए' बन जाता है– लड़केने, लड़केपर। परन्तु 'क' 'न' तथा 'र'

प्रत्ययसे परे ये 'को' आदि विभक्तियाँ सम्भव नहीं। हाँ, सम्बन्धी पदमें यदि ये विभक्तियाँ हों, तब जरूर 'का' 'रा' को अेकारान्त रूप मिल जाता है—'रामके घोड़े को'। विभक्ति परे न हो, तब- 'रामका घोड़ा है' चलता है।'

परन्तु अेक स्थल अैसा भी है, जब न 'का' रहता है, न 'की' रहती है। सर्वत्र 'के' 'ने' तथा 'रे' रहते हैं—

रामके अेक घोड़ा है, तेरे चार पुत्र हैं
रामके चार गौअें हैं, अपने तो अेक लड़की ही है
सुशीलाके अेक गाड़ी है, दो बैल हैं
दशरथके अेक कन्या भी थी
सुशीलाके लड़का हुआ है

सर्वत्र 'के' है। जब सम्बन्धी अुद्देश्य रूपसे आता है, तब अपने अनुसार 'का' 'ना' और 'रा' को बदलता है—

रामकी गौ चरती है। अपनी गौ कहाँ गअी?
गोविन्दके लड़के पढ़ते हैं। तुम्हारे लड़के पढ़ते हैं?
लड़कियोंका मन कसीदेमें लगता है।

यहाँ 'गौ' 'लड़के' तथा 'मन' आदि अुद्देश्य रूपसे हैं। अुनके चरने, पढ़ने तथा लगने आदिका विधान है। सो, अुद्देश्य-रूप सम्बन्धी सर्वत्र 'का' को अपने अनुसार किये हुअे है।

परन्तु अूपरके अुन वाक्योंमें घोड़ा, गौअें, गाड़ी-बैल, कन्या तथा लड़का; ये सब अुद्देश्य रूप नहीं हैं। अुनका 'होना' विधेय है, जिससे स्वत्व या आत्मीयता आदि प्रकट होती है। अिसीलिये, यह सब ध्वनित करनेके लिये, 'का' के 'आ' को सर्वत्र 'ये' रूप मिला है। अुसमें कोअी परिवर्तन नहीं होता।

अिसी तरह विभिन्न प्रयोग होते हैं। 'रामकी भूख' और 'गोविन्द का क्रोध' आप देख चुके; साधारण बात है। परन्तु मानसिक आवेगोंको या शारीरिक (नैसर्गिक) आवश्यकताओंको विशेष रूपसे प्रकट करना हो, तो फिर सम्बन्धमें 'का' या 'रा' का प्रयोग न होगा; 'को' या संश्लिष्ट 'अी' विभक्ति लगेगी--

१–रामको भूख लगी, मोहनको प्यास लगी।

२–रामको क्रोध आ गया, गोविन्दको तैश आ गया।

'स्नेह' अिन सब आवेगोंकी तरह नहीं है; अिसलिये— 'मोहनपर रामको प्यार है', आदि प्रयोग न होंगे; किन्तु 'रामका प्यार है' यों 'का' आयेगा। 'माँ में बच्चेके प्रति निसर्गतः प्रेम होता है', यहाँ अधिकरण है; पर 'माँ का प्रेम बच्चेपर निसर्गतः होता है' यहाँ सम्बन्ध-सूचक 'का' है और 'बच्चा' अधिकरण है— 'बच्चेपर'। बात अेक ही।

अिसी तरह भाषामें अनन्त प्रयोग अिन्हीं गिनी-चुनी विभक्तियोंसे होते है; पर खूबी यह कि कहीं भ्रम या सन्देह नहीं रहता। अिस छोटी-सी पुस्तकसे दिङ्-निर्देश भर हो सकता है। शेष सब अभ्याससे स्पष्ट होगा।

स्वाध्यायः—

१ – विभक्तियाँ क्या है ?

२ – संश्लिष्ट और विश्लिष्ट विभक्तियोका अन्तर बताअिये ?

३ – अिकारान्त और ओकारान्त शब्दोंके बहुवचन कैसे बनते है ?

४ – निम्नलिखित संज्ञाओंके सम्बोधन बताअिये :—

अध्यापक, सैनिक, विद्वान, मजदूर, पूंजीपति, मंत्री।

५ – 'को' और 'से' विभक्तिका प्रयोग किन-किन कारकोंमें होता है ?

६ – नीचे लिखे वाक्योंको शुद्ध कीजिये :—

लड़की बच्चे ने खिला रही है।

वह घोडेसे नहला रहा है।

हमको सब काम कर लिया।

पाँचवाँ अध्याय

क्रिया-प्रकरण

अब पुस्तकका उत्तरार्द्ध प्रारम्भ होता है, जिसके प्रारम्भमें सबसे पहले 'क्रिया' या 'धातु' का विवेचन होना चाहिए। भाषामें 'क्रिया' सर्व प्रधान तत्त्व है—भाषाकी जान है। शब्द के जिस अंशसे क्रियाके विविध रूप बनते हैं, उसे 'धातु' कहते हैं। लोहा, सोना, पीतल आदि धातुओंसे जसे विविध चीजें तैयार होती हैं, उसी तरह इन धातुओंसे विविध शब्द बनते हैं।

हिन्दीमें कोई भी धातु व्यञ्जनान्त नहीं है; सभी स्वरान्त हैं—खा, पी, पढ़, छू आदि। इनमें 'न' ('ना') कृदन्त प्रत्यय जोड़ देनेसे 'खाना, पीना, पढ़ना, छूना आदि भाववाचक संज्ञाएँ बन जाती हैं, जिन्हें (हिन्दीमें) 'क्रियाका सामान्य रूप' भी कहते हैं। क्रियाके इन रूपोंसे कोई काल या पुरुष आदिकी प्रतीति नहीं होती। संस्कृतमें 'भावप्रधान' इन्हें इसीलिये कहते हैं। वहाँ 'शुद्धो धात्वर्थो भावः'—धातुका वह विशुद्ध अर्थ 'भाव' कहलाता है, जिसमें किसी भी काल-पुरुष आदिका लगाव न हो। संस्कृतके 'पठन' आदिको ही 'न' हिन्दीने ले लिया है। संस्कृतमें 'पठन' आदिके नपुंसक-लिङ्ग प्रयोग होते हैं—'पठनम्'। हिन्दीने नपुंसक लिङ्ग उड़ाकर उसकी जगह पुल्लिङ्ग कर दिया। सो, 'न' प्रत्ययमें अपनी पुंविभक्ति (ा) लगा देती है—**पढ़ना, लिखना, बोलना** आदि।

प्रकारान्तरसे यह भी कह सकते हैं कि क्रियाके सामान्य रूपोंसे 'न' प्रत्यय ('ना') अलग कर लें, तो जो मूल अंश बच रहता है, वही 'धातु' है।

कोई क्रिया सकर्मक होती है, कोई अकर्मक; परन्तु 'कर्ता' के बिना तो उस (क्रिया) की सम्भावना ही नहीं! यह और बात है कि 'कर्ता' कहीं अविवक्षित हो और इसलिये सामने न रखा जाय।

'तिङन्त' और 'कृदन्त'

संस्कृतमें क्रियाएं दो तरहसे चलती हैं और उन चालोंके अनुसार उनके दो भेद वहाँ हैं—१– तिङन्त और २–कृदन्त। वहाँ ये दोनों शब्द 'यौगिक' हैं; जिन्हें हम रूढ शब्दकी तरह हिन्दीमें प्रयुक्त करते हैं। 'गौण' प्रयोग समझिए। कारण, हिन्दीमें 'तिङ' या 'कृत्' कोअी प्रत्यय हैं नहीं। संस्कृतमें 'तिङन्त' क्रियाएं कर्ता या कर्मके अनुसार लिंग-परिवर्तन नहीं करतीं— 'रामः पठति' और 'सीता पठति' कोअी अन्तर नहीं। परंतु 'कृदन्त' क्रियाएं कर्ता या कर्मके अनुसार लिंग-परिवर्तन करती हैं— १–बालकः पतितः २–बालिका पतिता ३–फलम् पतितम्। लड़का गिरा और लड़की गिरी। 'पतितम्' नपुंसक लिंग है, 'फलम्' के अनुसार। 'पतन' क्रिया अकर्मक है, कर्ताके अनुसार लिंग-परिवर्तन। सकर्मक क्रिया (कृदन्त) 'कर्म' के अनुसार लिंग-परिवर्तन करेगी— 'रामेण अमृतम् पीतम्' और 'रामेण सुधा पीता'— रामने अमृत पिया और रामने सुधा पी। या 'रामेण संहिता पठिता' और 'सीतया वेदः पठितः'— 'रामने संहिता पढ़ी' और 'सीताने वेद पढ़ा'। कर्तासे मतलब नहीं, क्रियाने कर्मके अनुसार लिंग-परिवर्तन किया है। ये सब 'कृदन्त' क्रियाएं हैं।

यह ब्यौरा अिसलिये दिया गया; कि हिन्दीमें भी दो ही तरहसे क्रियाएं चलती हैं—'तिङन्त' मार्गसे; या 'कृदन्त' मार्गसे। दोनों मार्गोंको मिलाकर भी चलन है—'रामः सुप्तः अस्ति' और 'सीता सुप्ता अस्ति'— 'राम सोया है' और 'सीता सोयी है', या 'सोअी है'। 'सुप्त' 'सुप्ता'(सोया-सोअी) कृदन्त हैं और 'अस्ति' ('है') तिङन्त।

हिन्दीमें 'गया था' के दोनो अंश कृदन्त हैं; पर 'गया है' में— 'कृदन्त–तिङन्त'। 'गया–आया' कृदन्त क्रियाएं हैं। परन्तु विधि-आज्ञा आदिमें पूर्ण तिङन्त—'राम पढ़े, सीता पढ़े' आदि। धातुमें लगनेवाले

प्रायः सभी प्रत्यय हिन्दीमें संश्लिष्ट हैं; यह आगे स्पष्ट किया जायगा। यहाँ केवल इतना बताना है कि क्रियाएँ हिन्दीमें तिङन्त-कृदन्त दोनों मार्गोंपर चलती हैं। काल आदिकी व्यंजना कहीं पृथक् प्रत्ययसे की जाती है और कहीं 'है' तथा 'था' आदि सहायक क्रियाओंसे भी। सहायक क्रियाओंमें सत्तार्थक 'होना' क्रियाकी बहुत व्यापकता है। 'है' की बड़ी मदद है। 'था' भी इसीका भूतकालिक रूप है। यहाँतक 'है' की सत्ता है कि स्वयं अपने रूप में भी सहायक क्रियाके रूपमें लगती है— 'होता है'। 'है' तथा 'होता है' में अन्तर हो गया— 'अस्ति' तथा 'भवति' की तरह। 'राम विद्वान् है' और 'लड़का पढ़कर ही विद्वान् होता है' प्रयोगोंमें अन्तर देखिये। 'है' की ही धातु ('हो') का कृदन्त-रूप 'होता' है—'लड़का होता' है और 'लड़की होती है।' कर्ताके अनुसार कृदन्तका लिंग-परिवर्तन; परन्तु सहायक क्रिया तिङन्त 'है' अेकरूप। सो, कृदन्त-तिङन्त क्रियाएँ यहाँ पृथक् रूपमें स्पष्ट हैं और दोनो पद्धतियोंका साहचर्य्य-सहयोग भी है।

आगे हम कुछ तिङन्त कृदन्त प्रत्ययोंका विवरण देंगे, जिससे सब समझमें आ जायगा।

१—तिङन्त प्रत्यय—'ए'

तिङन्त प्रत्ययोंमें पहले 'ए' (े) प्रत्यय देखिए। इसकी विशेषता यह है कि केवल अेक ही धातुमें यह लगता है और फिर इस प्रत्ययसे युक्त वह धातु, क्रिया-पद बनकर, अन्य सभी धातुओंका बराबर काम चलाती है। कोयला-पानी इंजनमें, सभी डिब्बोंमें नहीं; परन्तु गति सबमें (जहाँ इंजिन लगा है)। इसी लिए इसे सबसे पहले लिया है। यह प्रत्यय 'हो' धातुमें लगता है। 'होना' का 'ना' अलग कर दीजिए, यही धातु है– 'हो'। इस 'हो' धातुसे कर्तृ-प्रधान 'ए' (े) प्रत्यय होता है, वर्तमान कालमें। 'ए' प्रत्यय परे देखकर धातुका 'ओ' उड़ जाता है, लुप्त हो जाता है। तब 'ह्' आगे प्रत्ययसे मिलकर 'है' रूपमें आ जाता है।

यह 'है' (अकर्मक क्रिया) स्वतंत्र रूपसे भी प्रयुक्त होती है और दूसरी क्रियाओंके आगे लगकर अुन्हें सहयोग-सहायता भी देती है। अिंजन अकेला भी चलता है और दूसरोंको खींचता भी है।

यह प्रत्यय तिङन्त है, अिस लिए कर्ताके अनुसार अिसमें कोअी लिङ्ग-परिवर्तन नहीं होता; पुरुष तथा वचन जरूर बदलते हैं। 'है' अकर्मक क्रिया है; अिस लिए 'कर्म' का यहाँ कोअी जिक्र ही नहीं। जब सकर्मक क्रियाकी सहायताके लिए यह 'है' कहीं जाती है, तब अुसके 'कर्म' के अनुसार भी अिसमें कोअी लिंग-परिवर्तन नहीं होता। नीचे कुछ अुदाहरण।

१–राम है, लड़का है, लड़की है।

२–रामकी लड़की है, सुरेशका लड़का है। किसी कृदन्त क्रियाके साथ भी—

राम पढ़ता है, लड़के पढ़ते हैं, लड़की पढ़ती है। 'पढ़' धातुमें यह 'त' कृदन्त प्रत्यय है, कर्तृवाच्य। कर्ताके अनुसार ता, ते, ती रूप हैं। परन्तु 'है' में कोअी परिवर्तन नहीं।

अिसी तरह सकर्मकमें—

रामने फल खाया है, रोटी खाअी है।

'खाया' तथा 'खायी' में लिंग कर्मके अनुसार परिवर्तित है; परन्तु सहायक क्रिया 'है' ज्यों की त्यों है।

स्वयं अपने ही अेक दूसरे रूपमें, कर्तृवाच्य 'त' प्रत्यय जहाँ कृदन्त है, 'है' अपरिवर्तित देखिये—

'लड़का चंचल होता है— लड़की शालीन होती है'

परन्तु वचन तथा पुरुष तिङन्त क्रियाओंका जरूर बदलता है, अपने कर्ताके अनुसार—

'तुम हो' और 'मैं हूँ'

मध्यम पुरुषके बहुवचनमें 'अ' को 'ओ' हो जाता है और अुत्तम पुरुषके अेक वचनमें अुसे 'ऊँ' हो जाता है। यह 'ओ' तथा 'ऊँ' सदा ही

'तुम' तथा 'मैं' के लिये हिन्दीमें आते हैं। अन्य धातुओंमें भी देखेंगे। पढ़ो, पढ़ूँ, आदि।

बस, ये दो परिवर्तन होते हैं— 'तुम हो' और 'मैं हूँ'। अिनके अतिरिक्त अन्यत्र कहीं भी 'पुरुष' के अनुसार 'ै' प्रत्ययमें कोअी परिवर्तन नहीं होता। कर्ताके अनुसार 'वचन' बदलता है। संस्कृतमें बहुवचन बनानेमें 'न्' काम आता है— (पठति–पठन्ति) और हिन्दीमें अुस ('न्') का प्रतिनिधि अनुनासिकत्व है— 'है' से 'हैं'।

दीर्घ स्वरपर अनुनासिकका चिह्न ('ँ') अनुस्वारका जैसा (ं) भी हो जाता है, सो कर्ममें। कारण, यह कि दीर्घ स्वरपर अनुनासिक ही अुच्चारित होता है— 'ं' होनेपर भी।

लड़का है — लड़के हैं

लड़का जाता है — लड़के जाते हैं।

और—

तू है, राम है, सीता है, कोअी है—सर्वत्र 'है' समान। अिसी तरह—

लड़के हैं, लड़कियाँ हैं, हम हैं, सब हैं।

सभी जगह 'हैं' समान है। केवल दो जगह भेद—

'तुम हो' और 'मैं हूँ'

यह अितना सरल गति 'ै' तिङन्त प्रत्यय 'हो' धातुमें लगकर हिंदीको सरलसे सरलतम बना देता है। हिंदीकी सभी क्रियाएँ वर्तमान-कालमें अिसीके सहारे चलती हैं। 'आसन्न भूतकाल' आदिमें भी यही सहायता करता है।

२–विधि आदिमें 'अि' प्रत्यय

विधि, आज्ञा, प्रार्थना, प्रश्न, सम्भावना तथा आशीर्वाद आदि व्यंजित करनेके लिये धातुओंसे 'अि' प्रत्यय होता है, कर्तृप्रधान। यानी कर्ताके ही अनुसार अिसके पुरुष-वचन बदलेंगे।

अकारान्त धातुओंसे परे 'ओ' हो, तो धातुका 'अ' और प्रत्ययका 'ओ' मिलकर 'ओ' हो जाते हैं। धातुका व्यंजन आगे 'ओ' में मिल जाता है:—

'राम पढ़े, काम करे, घूमे नहीं'

बहुवचनमें प्रत्यय अनुनासिक हो जाता है:—

बालक पढ़ें, बालिकाएँ पढ़ें, हम भी पढ़ें।

केवल 'मैं' तथा 'तुम' आनेपर परिवर्तन होगा– 'ए' को 'ऊँ' तथा 'ओ' हो जायेगा—

'मैं भी पढ़ूँ ?'– 'हाँ, तुम भी पढ़ो' एकत्र प्रश्न, अन्यत्र आज्ञा है।

यदि धातु अकारान्त न हो, कोभी अन्य स्वर अन्तमें हो, तो फिर 'ओ' का 'ए' हो जाता है। और कोभी सन्धि न होकर यह (ओ) अलग दिखाभी देता है संश्लिष्ट विभक्ति होनेके कारण अलग नहीं रहता; देखिये—

जाओ, आओ, गाओ, बजाओ, धोओ, सोओ, रोओ बहुवचनमें—

जाएँ, आएँ, गाएँ, बजाएँ, धोएँ, सोएँ, रोएँ आदि कर्ताके अनुसार 'पुरुष' में वहीं दो जगह परिवर्तन–

'मै जाऊँ ?' हाँ, तुम जाओ

सोऊँ ?—सोओ। 'छुऊँ ?'—'छुओ'

धोऊँ ?—धोओ

गाऊँ ?—गाओ

'ओ' को 'ऊँ' और 'ओ' स्पष्ट आदेश है; अन्यत्र—

वे पढ़ें, हम पढ़ें, लड़कियाँ पढ़ें।

सर्वत्र समान। लोग गलतीसे–' सब लड़के सो जायें' या 'फिर अपने फल खायें' यों 'य्'-सहित लिख देते हैं।

मध्यम पुरुषके एक वचनमें भिन्न 'ओ' प्रत्ययका सर्वथा लोप हो जाता है:– 'तू पढ़, तू कर'। यह संस्कृतके 'त्वं पठ' के अनुकरणपर है। वहाँ भी लोप होता है। 'पढ़' की ही तरह—

तू जा, तू खा, तू धो, तू रो, तू छू आदि समझिअे। छोटे बच्चेके लिये प्यारमें मध्यम पुरुष अेक वचनका प्रयोग होता है; छोटे नौकर-चाकरोंके लिअे भी होता है (यहाँ वह प्रेम नहीं, अेक हलकेपनकी भावना रहती है) और सर्वश्रेष्ठ सत्ता (भगवान्) के लिए भी प्रेममें–'तेरी शरणमें हूँ, तेरी अिच्छा हो, सो कर' आदि प्रयोग होते हैं, जिससे 'अनन्यता' भी झलकती है।

३–'अिए'

पहलेके दोनों तिङ्-प्रत्यय कर्तृवाच्य है। कर्ताके अनुसार कृदन्त क्रियाअें 'पुरुष' तथा वचनमें कहीं रूप-परिवर्तन करती हैं। परंतु यह 'अिअे प्रत्यय भाववाच्य तिङन्त है। यह प्रत्यय लगनेपर जो क्रिया-रूप बनता है, वह कभी बदलता नहीं– कर्ताके वचन आदिका प्रभाव कुछ भी नहीं पड़ता।

'अिए' प्रार्थनार्थक प्रत्यय है, अनुनय-विनय आदि प्रकट करनेके काम आता है और अिसीलिये अिसका कर्ता सदा 'आप' रहता है, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष।

'अिए' प्रत्यय परे हो, तो अकारान्त धातुका अन्तिम वर्ण ('अ') लुप्त हो जाता है और व्यंजन प्रत्ययके स्वरसे जा मिलता है— पढ़+अिअे= पढ़िए, निकलिए, चढ़िए आदि।

ओकारान्त धातुओंमें कोअी परिवर्तन नहीं होता—'सोअिअे' 'धोअिअे', 'पोअिअे' आदि।

ऊकारान्त धातुके 'ऊ' का प्रायः ह्रस्व हो जाता है—'छुअिअे'।

'ले' तथा 'पी' आदि धातुओंसे परे 'अिए' हो, तो बीचमें (प्रकृति तथा प्रत्ययके बीचमें) 'ज्' का आगम हो जाता है, अेक'विकरण'समझिअे। यानी 'अिए' बन जाता है–'जिअे'– 'लीजिअे', 'कीजिअे', 'पीजिअे' आदि। 'ले' के 'अे' को 'ी' हो गया है, 'कर' को 'की' आदेश हो गया है और 'पी' ज्यों-का त्यों है।

तिङन्त हिंदी-क्रियाओं बहुवचनमें अन्तिम स्वर अनुनासिक कर लेती हैं; सो यहाँ है नहीं। अिसीलिअे 'अिये' भावप्रधान प्रत्यय है कर्तृ-प्रधान नहीं। कर्मप्रधान भी नहीं हैं; क्योंकि सकर्मक स्थलमें कर्मके अनुसार भी अिसके रूपमें कोअी परिवर्तन नहीं होता—

'आप पुस्तक पढ़िअे', 'आप पुस्तकें पढ़िअे' अुभयत्र समान रूप। कृदन्त प्रत्ययमें, अन्तमें, हिंदी अपनी संज्ञा-क्षेत्रीय पुंविभक्ति जरूर लगा देती है और तब अुस (कृदन्त क्रिया) के रूप संज्ञाकी ही तरह चलते हैं— राम गया, लड़की गयी, कर्तृवाच्य; रामने फल खाया, रामने रोटी खाअी; स्त्रीलिङ्ग; रामने फल खाअे, वे गअे; बहुवचन। सर्वत्र 'आ' प्रत्यय और अुसीका अनुशासन है, संज्ञाकी ही तरह; संस्कृतमें जैसे-- रामः गतः, बालकाः गताः और फलम् भुक्तम् आदि। तिङन्त क्रिया कभी भी संज्ञाकी चाल नहीं पकड़ती। अिसीलिए 'अिए' तिङन्त प्रत्यय है।

हिन्दीमें विधि-वाचक 'चाहिए' क्रिया प्रसिद्ध तथा व्यापक है। विध्यर्थक तथा प्रार्थनार्थक प्रत्यय अेक भी होते देखे जाते हैं। 'अिए' प्रत्ययसे भी चाहे जिस धातुका चाहे जो रूप आप बना लें, अुससे प्रार्थना आदिकी व्यक्ति होगी। पर प्रायः सर्वत्र 'चाहिए' की जरूरत पड़ती है, जब विधि प्रकट करनी होती है—'रामको पढ़ना चाहिए' 'आपको सवेरे अठना चाहिए' अित्यादि। 'राम पढ़े' कहनेसे भी विधि व्यंजित हो जाती है। यानी 'अिअे' प्रत्यय विधि-अर्थ भी देता है; परंतु 'चाहिए' सदा ही विध्यर्थक है।

तब 'चाहिए' क्या है? अिसकी धातु 'चाह' भी सोचनेकी चीज है। स्नेहार्थक 'चाह' धातु तो 'चाहिए' में है नहीं। 'मैं तुझे बहुत चाहता हूँ' में जो बात है, वह 'चाहिए' में मालूम नहीं देती। तब क्या है?

पहले मैं 'चाहिए' को 'अिए' प्रत्ययान्त (तिङन्त) भावप्रधान क्रिया समझा करता था। परंतु प्रकृति-प्रत्ययका विश्लेषण करनेपर अैसा

लगता है कि यह विध्यर्थक 'क्रियाप्रतिरूपक' अव्यय है। संस्कृतमें भी कभी क्रिया-प्रतिरूपक अव्यय हैं। ये क्रियाओंकी ही तरह काम देते है; पर कभी अुनके रूपमें परिवर्तन नहीं होता।

सम्भव है, कोअी अन्य 'चाह' धातु कभी हिंदीमें चलती हो और 'अिए' प्रत्यय तब भी विधिका अर्थ देता हो। तब 'चाहिए' बना हो। कालान्तरमें अुस 'चाह' का स्वतंत्र प्रयोग हिन्दीसे अुठ गया हो और दोनोके संस्कार लिए 'चाहिए' अमर हो गया हो, अव्यय बन गया हो।

यहाँतक कुछ तिङन्त प्रत्यय दिअे गअे। अब आगे कुछ कृदन्त देखिअे।

स्वाध्याय:—

१ – भाषामे क्रियाका क्या स्थान है ?
२ – हिन्दीमे कितने प्रकारकी क्रियाअे है ?
३ – सकर्मक और अकर्मक क्रियामे अन्तर क्या है ?
४ – तिङन्त प्रत्यय 'अिअे' का प्रयोग बताअिअे।
५ – विधि, आज्ञा, प्रार्थना, प्रश्न, सम्भावना तथा आशीर्वादमे कौन प्रत्यय लगता है ?
६ – क्रियापर कर्ता या कर्मके वचन आदिका प्रभाव कब नही पडता?
७ – विधिवाचक क्रिया क्या है ?
८ – कुछ विभिन्न विभक्तियोका प्रयोग बताअिए ?
९ – नीचे लिखे वाक्योमे क्रियाका रूप बतलाअिए —

अुसने किताब पढी। लडकी गाना गाती है। रामको परीक्षा देनी है। मोहनको प्यास लगी। राम रोने लगा।

छठा अध्याय

कृदन्त क्रियाएं

धातुओंसे लगे प्रत्ययमें संज्ञा-विभक्ति (हिन्दी पुं-प्रत्यय) 'आ' (ा) का लगाव जहाँ नजर आए, समझ लीजिए कि 'कृदन्त' है। अिसके सब काम संज्ञाकी ही तरह होते हैं। अुदाहरणके लिए कुछ प्रत्यय यहाँ देंगे—

१–कृदन्त 'त' पूर्ण भूतकालीन

हिन्दीमें पूर्ण भूतकाल प्रकट करनेवाला कर्तृ-प्रधान यह अकेला प्रत्यय है। जैसे वर्तमान प्रकट करनेके लिए 'ै' 'तिङन्त' अुसी प्रकार पूर्ण भूतकाल प्रकट करनेके लिए यह कृदन्त। यह केवल 'हो' धातुमें लगता है। अिससे बना 'हो' का 'था' रूप भी दोनों तरहसे चलता है, स्वतन्त्र भी और दूसरोंका सहायक होकर भी।

'हो' धातुसे 'त' प्रत्यय होनेपर धातुके स्वरका लोप हो जाता है, तब स्थिति होती है––'ह् त् अ'। वर्ण-प्रत्ययसे 'त्' को पीछे करके महाप्राण 'ह्' आगे आ बैठा। अैसे अुलटफेर भाषामें अगणित होते हैं, हिंदी-निरुक्त देखिये। 'त्' और 'ह्' मिलकर 'थ्'। 'थ्' आगे पड़े 'अ' से जा मिला; 'थ' रूप निष्पन्न। 'थ' में पुंप्रत्यय 'आ' लगा, सवर्ण दीर्घ, बन गया–– 'था'। अिसका बहुवचन 'थे' और स्त्रीलिंग 'थी'। अिस 'था' का स्वतन्त्र प्रयोग भी होता है; दूसरी क्रियाओंके साथ भी होता है, जब कि पूर्ण भूत-कालकी विवक्षा हो।

'अेक राजा था, अेक रानी थी, लड़के थे' अन्य क्रियाओंका पूर्ण भूतकाल बनानेके लिअे—

'वह काशी गया था' 'सीताने रोटी खाअी थी'

स्वयं पूर्ण भूतकाल प्रकट करता है– 'राजा था'। सामान्य भूत-कालकी क्रियाके साथ लगकर अुसे पूर्ण भूतकालकी बना देता है– 'गया था'। और, वर्तमान कालकी क्रियाको भी खींचकर भूतकालकी बना देता है– 'तब राम पढ़ता था'। 'त' प्रत्यय यह वर्तमान कालका है– पढ़नेकी क्रिया चल रही थी तब, यह बतानेके लिअे। परन्तु बात बहुत दिनकी है, यह बात 'था' ने बतायी।

२– वर्तमान कर्तृवाच्य 'त' प्रत्यय

यह 'त' प्रत्यय वर्तमान कालमें आता है और अिसका 'कर्तरि' प्रयोग होता है; अर्थात यह 'कर्ता' के लिंग-वचन आदिका अनुगमन करता है। कहा जा चुका है कि कोअी भी कृदन्त शब्द बना और हिन्दीकी संज्ञा-विभक्ति अुसमें लगी। संज्ञाविभक्ति वही– 'आ' (1)। सो, कर+त+आ= 'करता'। बहुवचनमें 'करते' और स्त्रीलिंगमें 'करती'।

लड़का, लड़के, लड़की
करता, करते, करती

अिसके आगे सामान्य वर्तमानकी तिङन्त क्रिया 'है' लगाकर सब रूप बनते हैं। 'है' तिङन्त क्रिया है; अिसलिये पुं-स्त्रीमें समान रूप रहती है, बदलती नहीं। यह सहायक क्रिया है— काल-निर्देशार्थ। मुख्य क्रिया 'करता' कृदन्त है और अिसीलिए अुसके लिंग-वचन कर्ताके अनुसार बदलते हैं। 'पुरुष'–अभिव्यक्ति सहायक क्रिया 'है' के द्वारा होती है—

राम करता है, तू करता है, वह करता है
सीता करती है, तू करती है, वह करती है

बहुवचनमें—

लड़के करते हैं, वे करते हैं, वे करती हैं

'है' में कोअी परिवर्तन नहीं। परंतु 'पुरुष' के अनुसार परिवर्तन ('हैं' में) होता है—

'तुम करते हो, तुम करती हो—मैं करता हूँ, मैं करती हूँ'

संस्कृतमें भी जिसी तरह कृदन्त-तिङन्त क्रियाऐं चलती हैं, जहाँ कृदन्तमें पुं-स्त्री भेद होता है और तिङन्तमें 'पुरुष'-भेद होता है—

रामः सुप्तः अस्ति, सीता सुप्ता अस्ति, अहं सुप्तः अस्मि

३–हेतुहेतुमद्भूतके लिए 'त' प्रत्यय

अेक अन्य 'त' प्रत्यय कर्तृ-प्रधान है, जो हिन्दीमें 'हेतुहेतुमद्भूत-काल' में आता है—

वर्षा होती, तो अनाज होता
तुम पढ़ते, तो पास हो जाते
वह व्यायाम करती, तो अशक्त न होती

'हेतु' पहले दिये हैं–बर्षा होना, पढ़ना, व्यायाम करना। हेतुमान् (परिणाम) बादमें दिये हैं–अनाजका होना, पास होना, अशक्त न होना। भूतकाल है ही। क्रियाऐं निष्पन्न-नहीं हुअी हैं–न वर्षा हुअी है, न अनाज हुआ है। हेतुहेतुमद्भूत कालमें हेतु (कारण), हेतुमान् (कार्य), क्रियाकी अनिष्पत्ति तथा भूतकाल; इतनी बातें होती हैं। इसके लिअे यह 'त' प्रत्यय काम में लाया जाता है।

४–भूतकालिक 'य' प्रत्यय

सामान्य भूतकाल प्रकट करने के लिअे हिन्दी में 'म' प्रत्यय होता है, जो संस्कृतके 'कृत'के विकसित रूप 'किय'से अलग कर लिया गया है। इस 'य' में भी वही संज्ञा–विभक्ति लगाकर—

सोया, सोये, सोयी रूप बनते हैं और 'य्' का लोप करके– सोया, सोअे, सोअी रह जाते हैं। यह 'य' प्रत्यय अकर्मक क्रियाओंसे कर्तृप्रधान होता है, कभी भावप्रधान भी। कर्तृप्रधानका अुदाहरण अूपर है। भावप्रधान—

रामने नहाया, हमने नहाया, मुन्नीने नहाया सर्वत्र पुल्लिंग, अेकवचन। संस्कृतमें भाववाच्य सदा नपुंसकलिङ्ग एक वचन रहता है—

रामेण स्नातम्, अस्माभिः स्नातम्, बालिकया स्नातम् । सर्वत्र 'स्नातम्'। हिन्दीने नपुंसक लिङ्ग हटा दिया है। अुसकी जगह पुल्लिङ्ग का चलन किया गया।

सकर्मक धातुओंसे यह 'य' प्रत्यय कभी कर्मवाच्य होता है, और कभी भाववाच्य। कर्मवाच्य, अर्थात् 'कर्मणि प्रयोग' —कर्मके अनुसार (क्रियाके) लिङ्ग-वचन आदि—

रामने कपड़ा धोया
लड़कोंने कपड़ा धोया
लड़कीने कपड़ा धोया
लड़कियोंने कपड़ा धोया

कर्म बहुवचन कर दें—

रामने कपड़े धोअे (धोये)
लड़कीने कपड़े धोअे (,,)
हमने कपड़े धोअे (,,)
तूने कपड़े धोअे (,,)
मैंने कपड़े धोअे (,,)

कर्म स्त्रीलिङ्ग कर दीजिए—

रामने धोती धोअी (धोयी)
तूने धोती धोअी (,,)
मैंने धोती धोअी (,,)
लड़कोंने धोती धोअी (,,)

जब सकर्मक क्रियाका 'भावे' प्रयोग होता है, तो 'य' प्रत्ययान्त क्रिया सदा पुंल्लिङ्ग एकवचन रहती है—

पाल-पोसकर मैंने लड़कीको इतना बड़ा बनाया
,, ,, पिताने ,, ,, ,, ,,
,, ,, बहनोंने बहनको इतना बड़ा बनाया, सर्वत्र क्रिय 'बनाया' है।

जिस धातुमें एकसे अधिक स्वर होते हैं, उससे परे 'य' प्रत्ययका लोप हो जाता है—

मैंने तुमको देखा

'खड़ी बोली'की जन्मभूमि (कुरु-जनपद) में 'य' का लोप किये बिना भी 'देख्या' 'पढ्या' आदि बोलते है। परन्तु राष्ट्रभाषाने ऐसी जगह 'य' का लोप अनिवार्य कर दिया है। भाववाच्य सकर्मक—

मैंने तुमको देखा
हमने तुमको देखा
लड़कीने तुमको देखा

सर्वत्र 'देखा' क्रिया रहेगी। न कर्ताके अनुसार ही परिवर्तन होगा और न कर्मके अनुसार ही। 'य' प्रत्यय सामान्य भूतकाल बनाता है। यदि आसन्न भूतकाल बनाना हो—वर्तमानकालके समीप ही भूत कहना हो—तो फिर य-प्रत्ययांतके आगे 'है' क्रिया सहायक रूपसे लगाते हैं—

राम सोया है, लड़की जागी है, लड़के उठे हैं।

कर्मवाच्य—

रामने पुस्तक पढ़ी है
सीताने वेद पढ़ा है

इस 'है' में 'पुरुष'-भेद होगा ही—

तू उठा है, तुम उठे हो, मैं उठा हूँ

'आसन्न' का अर्थ है 'समीप'। समीप वर्तमानके; अर्थात् पुस्तक आदि पढ़े अभी बहुत देर नहीं हुई है। यह आसन्नता 'है' से प्रकट होती है। 'हो' धातु का 'य' प्रत्ययान्त रूप 'हुआ' होता है। 'हो' एक स्वर धातु है, तो भी 'य' का लोप हो जाता है। 'हुया' बोलनेमें अटपटापन लोपका कारण है। धातु के 'ओ' 'को' 'ड' हो जाता है। यही चीज 'हुआ' आदि में समझिए। 'ऊ' 'को' 'अु' ह्रस्व। आसन्नभूत बनानेके लिए इसमें भी 'है' की सहायता लेनी होगी—

लड़का हुआ है, लड़की हुई है, कपड़ा हुआ है
मैं बडा हुआ हूँ, तुम बड़े हुए हो, कपड़े हुअे हैं

यदि क्रिया निष्पन्न हुअे देर हो गयी हो, तब 'है' न लगेगी और यदि बहुत समय बीत गया हो, तो फिर सहायक क्रियाके रूपमें 'था' का प्रयोग करना होगा। 'था' भी कृदन्त क्रिया है, अिसलिए कर्ता या कर्मके अनुसार अिसके भी लिङ्ग-वचन बदलेंगे। 'पुरुष' के अनुसार कृदन्त क्रियामें कोअी परिवर्तन होता ही नहीं है—

कर्तृवाच्य रूप—

लड़का सोया था, लड़के सोये थे, लड़की सोयी थी।

कर्मवाच्य रूप—

रामने पोथी पढ़ी थी
सीताने वेद पढ़ा था
लड़कियोंने पत्र पढ़ा था
तुमने पत्र पढ़ा था
हमने पत्र पढ़ा था
तुमने लड़के देखे थे
हमने लड़के देखे थे

भाववाच्य क्रिया सदा पुल्लिङ्ग अेकवचन रहती है और 'य' प्रत्ययान्त-के साथ अुसकी सहायक क्रिया 'था' भी अुसी तरह चलती है—

हमने तुमको देखा था
तुमने हमको देखा था
माँने लड़की को देखा था

जब भी यह 'य' प्रत्यय सकर्मक (कर्मवाच्य या भाववाच्य) क्रियामें आयेगा, 'कर्ता' में 'ने' विभक्ति जरूर लगेगी और केवल यही एक स्थल है; जहाँ 'ने' विभक्तिका प्रयोग होता है। अन्यत्र कहीं भी नहीं।

सकर्मक क्रियाओंसे 'कर्मणि 'या भावे' यह 'य' प्रत्यय होता है, यह स्पष्ट हुआ। अकर्मक क्रियाओं (धातुओं) से 'कर्तरि' या 'भावे', प्रयोग होता है; यह भी देख चुके। परन्तु ऐसी सकर्मक क्रियाओंमें जिसका 'कर्तरि' प्रयोग भी होता है, जिनका अर्थ 'जाना-आना' है, जो 'गत्यर्थक' है—

लड़का काशी गया
लड़की शहर गयी
लड़के गाँव गये

सर्वत्र 'कर्ता'के अनुसार क्रियाके लिङ्ग-वचन हैं, कर्म (काशी, शहर तथा गाँव) के अनुसार नहीं। हिन्दीने गत्यर्थक धातुओंकी यह पद्धति संस्कृतके अनुसार ग्रहण की है—

रामः काशीम् गतः- राम काशी गया
बालिका नगरम् गता- लड़की शहर गयी
बालकाः ग्रामम् गताः— लड़के गाँव गये

इसी तरह- बालक काशी आया
(बालकः काशीम् आगतः)

'गतः'का ही हिन्दी-रूप 'गया' है। भूतकालमें ही हिन्दीने संस्कृत 'गम्' धातुका रूप लिया है। अन्यत्र 'या' (याति) के 'या'को 'जा' करके 'जाता है' आदि। परन्तु 'जा' के भूतकाल में पृथक् रूप नहीं; 'गम्' का 'गया' जो आगया।

अन्यत्र सर्वत्र सकर्मक धातुओंसे 'य' प्रत्यय कर्मवाच्य या भाववाच्य होगा, हिन्दीमें। संस्कृतमें 'त' प्रत्यय सकर्मकसे भाववाच्य नहीं होता, केवल कर्मवाच्य होता है; इतना अन्तर।—

रामेण सीता आहृता
सीतया रामः आहृतः

कर्मके अनुसार परिवर्तन है। परन्तु हिन्दीमें सकर्मकका भाववाच्य प्रयोग होता ही है—

रामने सीताको बुलाया
सीताने रामको बुलाया

बस, इतना अन्तर है। शेष सब संस्कृत-पद्धतिपर है।

५— 'न' प्रत्यय ('कर्मणि' तथा 'भावे')

कृदन्त 'न' प्रत्यय क्रियाकी अनिवार्यता अथवा आवश्यक कर्तव्यता प्रकट करनेके लिअे आता है। सकर्मक धातुओंसे कर्मवाच्य या भाववाच्य तथा अकर्मकोंसे केवल भाववाच्य प्रयुक्त होता है। 'न' के आगे पुंविभक्ति (ा) लगेगी ही। विधिमें या अवश्य कर्तव्यतामें जहाँ भविष्य रहता है वहाँ 'होगा' (आ) लगता है और तब विधिकी अपेक्षा आज्ञा ध्वनित होती है।

रामको वह काम करना होगा
माँको वह काम करना होगा
बहनोंको वह ,, ,, ,,
हमको ,, ,, ,, ,,
तुमको ,, ,, ,, ,,

कर्म स्त्रीलिङ्ग कर देनेपर—

रामको वह पुस्तक पढ़नी होगी
लडकोंको ,, ,, ,, ,,

स्त्रीलिङ्गमें पुंविभक्ति 'ई' बन जाती है। बहुवचन (पुल्लिङ्ग) में 'आ' को 'ए' हो ही जाता है—

रामको वे सब करने होंगे
सीताको ,, ,, ,, ,,
हमको ,, ,, ,, ,,
तुमको ,, ,, ,, ,,

यदि क्रियामें आसन्नता प्रकट करनी हो, तो तिङन्त 'है' सहायक क्रिया लगती है—

रामको वह काम करना है
रामको पुस्तक पढ़नी है
हमें अभी घर देखना है

'है' में कोअी परिवर्तन नहीं। भाववाच्य 'न' सदा पुल्लिङ्ग अेकवचन रहेगा—

रामको सबेरे अुठना होगा
सीताको ,, ,, ,,
हमको ,, ,, ,,
तुमको ,, ,, ,,

क्रियाकी आसन्नता प्रकट करने के लिए 'है' का सहयोग—

हमें अभी उठना है

'होगा' लगानेसे कुछ आज्ञा-सी ध्वनित होती है–'तुम्हें' काम करना होगा'। अुत्तम.पुरुषमें (आज्ञा आदि से) कुछ विवशता-सी ध्वनित होती है—

'हमें सबेरे अुठना होगा'

परन्तु 'है' का प्रयोग करनेसे आज्ञा या वैसी विवशता आदि नहीं ध्वनित होती वरन् अेक कर्तव्य-बुद्धि दिखाअी देती है—

हमें सबेरे अुठना है
तुम्हें परीक्षा अुत्तीर्ण करनी है

६—भाववाच्य 'न' प्रत्यय

अेक दूसरा 'न' प्रत्यय 'भावे' भी होता है। सकर्मक-अकर्मक सभी धातुओंसे यह भावप्रधान होता है। संज्ञा,विभक्ति लगकर—

पढना, लिखना, जाना, आना, धोना

आदि रूप बनते हैं। ये अिस तरह के कृदन्त रूप 'भाववाचक संज्ञाअें, या क्रिया के सामान्य रूप' कहे जाते हैं। शुद्ध धात्वर्थको 'भाव' कहते हैं,

जिसमें कर्तृत्व या काल आदि कुछ भी स्पष्ट हो। अुसीको 'क्रियाका सामान्य रूप' भी कहते हैं; क्योंकि विशेष कुछ मालूम नहीं होता, न कर्ता आदि, न काल आदि।

अिस तरहके कृदन्त शब्द संज्ञाकी ही तरह प्रयुक्त होते हैं और वैसा ही परिवर्तन होता है—

पढ़नेसे लाभ क्या, यदि शील नहीं

'लड़केसे' की तरह 'पढनेसे'। 'आ' को 'ए' हो गया, विभक्ति परे होनेसे। परन्तु अिन संज्ञाओंका प्रयोग सदा ही पुल्लिङ्ग अेकवचनमें होगा; न स्त्रीलिङ्गमें न बहुवचनमें। यही 'भाववाच्य' की पहचान है। 'हमें पुस्तक पढना अच्छा लगता है' इत्यादि ढंगके प्रयोगोंमें यह भावप्रधान 'न' है।

७— 'गा' प्रत्यय

भविष्यत् काल प्रकट करनेके लिअे 'गा' प्रत्यय काममें लाया जाता है—करेगा, पढेगा, आदि। यह प्रत्यय निश्चय ही 'था' की तरह मूलतः कोअी कृदन्त क्रिया है। 'ग' मात्र कृदन्त रूप है, जिसमें पुं-विभक्ति (ा,) लग कर 'गा' रूप हुआ; बहुवचन में 'गे' और स्त्री-लिङ्ग में 'गी'। 'था, थे, थी' की ही तरह। अन्तर अितना कि 'था' का प्रयोग पृथक् अेक स्वतंत्र क्रियाके रूपमें होता है; पर 'गा' वैसी चीज नहीं। 'गया-गअी' या इसके 'अवधी' रूप–'गा' 'गे' 'गै' (स्त्री०) से इस 'गा' का कोअी सम्बन्ध नहीं; क्योंकि 'गया' या अवधीकी 'गा' क्रिया ('सत जोजन गा लंका-पारा') भूतकाल प्रकट करनेवाली चीजें हैं, जब कि 'गा' भविष्यत प्रकट करनेके लिअे आता है। किस क्रियाका यह 'गा' रूप है, पता नहीं; और इसीलिअे अब अुसे अेक प्रत्यय ही समझा जाता है। अेक अैसा प्रत्यय, जिसके रूप बदलते हैं। संज्ञा विभक्तियोंमें 'क' ('का') तथा 'र' ('रा') भी अिसी तरहकी चीजें हैं, जो तद्धितीय अंश हैं।

संक्षेप यह कि 'गा' लगाकर भविष्यत् कालकी क्रिया बनायी जाती है।

जब धातुसे परे यह 'गा' प्रत्यय आता है, तो बीच में 'इ' (ि) विकरणकी उपस्थिति हो जाती है। धातुके अन्त्य 'अ' को अिस 'इ' से मिलकर 'ए' हो जाना और आकारान्त-ओकारान्त आदि धातुओंसे परे 'इ का 'ए' रूप में बदल जाना आदि सब अुसी तरह होता है, जैसा कि विधि प्रत्यय 'इ' परे होनेसे। 'गा' को संश्लिष्ट तथा विश्लिष्ट दोनों तरहसे लिखनेकी चाल हिंदीमें है। अेक प्रत्यय है; अिसलिअे संश्लिष्ट पक्षका समर्थन और 'था' की ही तरह मूलतः यह अेक कृदन्त क्रिया है; यह 'था' की तरह विश्लिष्ट प्रयोगमें तर्क है। 'वाच्य' के अनुसार रूप-परिवर्तन होगा।

कर्तृवाच्य—

राम पुस्तक पढ़ेगा
सीता पुंस्तक पढेगी
लड़के पुस्तक पढेंगे

कर्मवाच्य—

रामसे पुस्तक न पढी जाएगी
सीतासे पुस्तक न पढी जाएगी
लड़कोंसे पुस्तक न पढ़ी जाएगी

और—

सीतासे रोटी न बनेगी
रामसे रोटी न बनेगी
लड़कोंसे रोटी न बनेगी

भाववाच्य क्रियामें सदा पुल्लिङ्ग, एकवचन—

सीतासे उठा न जाएगा
रामसे अुठा न जाएगा
लड़कोंसे अुठा न जाएगा
हमसे, तुमसे या किसीसे भी उठा न जाएगा

विनय आदि प्रकट करने के लिअे 'इए' तथा 'जिए' के साथ भी भाव-वाच्य ही रहता है--

माफ कीजिएगा
रोटी बना लीजिएगा
पुस्तकें पढ़ लीजिएगा

कर्ता अैसे स्थलोंमें 'आप' रहता है, जो स्वभावतः बहुवचन है; पर क्रिया सदा अेकवचन पुल्लिङ्ग। 'आप' स्त्री हो, तो भी क्रिया पुल्लिङ्ग रहेगी। कर्मके अनुसार भी कहीं कुछ परिवर्तन नहीं।

यह ध्यान देनेकी बात है कि 'गा' प्रत्यय परे हो तो बीचमें 'इ' अेक विकरणके रूपमें आ जाता है और फिर सन्धि आदि अुसी तरह, जैसे विधि-प्रत्यय 'इ' परे होने पर-'राम पढ़े'-'राम पढ़ेगा'। 'मैं सोअूँ'-'मैं सोअूँगा', आदि। विधि-आज्ञा आदिमें क्रिया भविष्यतकी ओर झांकती है। अिसीलिअे विकरण तद्रूप लिया गया। वैसे यह 'इ' (विकरण) पृथक् चीज है।

अिस तरह कुछ तिङन्त तथा कृदन्त क्रियाओंका विवेचन और कुछ आवश्यक प्रत्ययोंका अुल्लेख अिस अध्यायमें किया गया। यथाप्रसंग 'काल' तथा 'वाच्य' का भी निर्देश हुआ। और प्रत्यय भी हैं, जिनमेंसे कुछ अगले अध्यायोंमें यथाप्रसंग बताये जायँगे।

स्वाध्यायः--

१. तिङन्त तथा कृदन्त क्रियाओके भेद बताअिये।

२. 'त', 'य', 'न' और 'गा' प्रत्ययोंका अुपयोग कहाँ होता है?

३. वाच्यके अनुसार क्रियाका रूप कहाँ परिवर्तित होता है?

सातवाँ अध्याय

'वाच्य' या 'प्रयोग'

क्रियामें स्वतः न कोअी लिङ्ग है, न वचन न 'पुरुष'-भेद। फिर भी, जब किसी शब्दसे अुस [क्रिया] का बोध कराया जाता है, तो लिङ्ग, वचन तथा 'पुरुष' कोअी न कोअी आयेगा ही। शब्दका प्रयोग किसी न किसी रूपमें ही तो होगा। क्रिया शब्दके अिसी प्रयोगकृत रूपको 'वाच्य' कहते हैं।

क्रियाके अतिशय समीप दो कारक हैं—कर्ता आर कर्म। लता अुसी वृक्षका आश्रय लेती है, जो अुसके समीप हो। अुसी रूपमें सीधी या टेढी भी हो जाती है। अिसी तरह क्रिया कभी कर्ताके अनुसार और कभी कर्मके अनुसार चलती है। कभी वह न कर्ताके अनुसार, न कर्मके अनुसार, प्रत्युत अेक पृथक् मार्ग ग्रहण करती है—अेक पृथक् रूप अपनाती है। इस तरह यह 'त्रिपथगा' है। जब कर्मके अनुसार क्रिया चलती है, क्रियाका 'कर्मणि' प्रयोग होता है, तो 'कर्मवाच्य' कहलाती है। जिस वाक्यमें मुख्य क्रिया कर्मवाच्य हो, अुस [वाक्य] को भी 'कर्मवाच्य' कह देते हैं। जब क्रिया कर्ताके अनुसार हो, 'कर्तरि' प्रयोग हो; अर्थात लिङ्ग-वचन आदि कर्ताके अनुसार हों, तो अुसे 'कर्तृवाच्य' कहते हैं। कर्मप्रधान क्रिया 'कर्मवाच्य' और कर्तृ-प्रधान क्रिया 'कर्तृवाच्य'। जब अिन दोनोंको छोड़ क्रिया अपना स्वतन्त्र पृथक् मार्ग ग्रहण करती है, 'भावे' प्रयोग होता है, तब अुसे 'भाववाच्य' कहते हैं। अैसी स्थितिमें क्रिया सदा पुल्लिंग—अेकवचन रहती है। संस्कृत में नपुंसक-लिंग और एकवचन नियत है। हिंदीने नपुंसक-लिङ्गकी जगह पुल्लिंग चलाया है। यह कृदन्त क्रियाकी बात है। यदि तिङन्त क्रिया भाववाच्य हुई, तो सदा अन्य पुरुष-अेकवचनमें रहती है।

वर्तमान कालमें क्रिया सदा कर्तृवाच्य रहती है। मुख्य क्रिया कृदन्त और सहायक क्रिया तिङन्त—

राम पुस्तक पढ़ता है, पुस्तकें पढ़ता है
सीता वेद पढ़ती है, चारों वेद पढ़ती हैं
तुम सभी विद्याएँ पढ़ते हो
मैं भी एक विद्या पढ़ता हूँ।

कृदन्त सर्वत्र क्रियामें लिङ्ग-वचन कर्ताके अनुसार है और तिङन्त क्रिया ('है') में 'पुरुष' कर्ताके अनुसार—'तुम हो–मैं हूँ।'

\+ + +

विधि–आज्ञा आदिकी क्रियाएँ भी प्रायः कर्तृवाच्य हैं; परन्तु सब तिङन्त हैं। कर्ताके अनुसार 'पुरुष' रहता है। तिङन्त क्रियामें लिङ्ग परिवर्तनकी बात ही नहीं होती। 'वचन' जरूर कर्ताके अनुसार बदलते हैं:—

सीता वेद पढ़े, राम वेद पढ़े
लड़के वेद पढ़ें, लड़कियाँ वेद पढ़ें
राम, तुम वेद पढ़ो
सीता, तुम वेद पढ़ो

सर्वत्र 'कर्ता' के अनुसार 'पुरुष'-वचन हैं—

राम, तू वेद पढ़
सीता, तू वेद पढ़

और प्रश्नमें—

सीताने कहा—'क्या मैं वेद पढ़ूँ ?'
रामने कहा—'क्या मैं वेद पढ़ूँ ?'

बहुवचनमें—

'क्या हम वेद पढ़ें ?'—लड़कियोंने कहा
'क्या हम वेद पढ़ें ?'— लड़कोंने कहा

ये क्रियाएँ कर्तृवाच्य तिङन्त हैं। कभी-कभी विधि, आदिमें विनयका पुट रहता है, तब भाववाच्य प्रयोग होता है—

बहन, देर हुअी; माफ कीजिए
बहन, देर हुअी; माफ कीजिएगा

'कीजिएगा' में तिङन्त–कृदन्त समझिए। या फिर 'गा' प्रत्यय मात्र है तब तिङन्त मात्र। मतलब यह कि 'कीजिएगा' क्रिया भी 'कीजिए' की ही तरह भाववाच्य है।

\+ + +

भविष्यत-काल की क्रियाएँ—

राम घर जायगा
सीता घर जायगी

\+ + +

लड़के हिंदी पढ़ेंगे
लड़कियाँ भूगोल पढ़ेंगी

ये कर्तृवाच्य हैं। जब भविष्यत्के साथ विधि या आज्ञा आदिका सम्पर्क हो, तब 'न'–प्रत्ययान्त क्रियाएँ कर्मवाच्य होती हैं—

रामको हिन्दी पढ़नी होगी
सीताको घर सजाना होगा
लड़कियोंको अभिनय करना होगा
हमको कसरत करनी ही पड़ेगी
तुझे वे काम करने होंगे

'राम' तथा 'सीता' आदि (कर्ता-कारकों) की ओर क्रियाका कतअी रुख नहीं है। कर्म ('हिन्दी' आदि) के अनुसार 'पढ़नी होगी' आदि क्रियाएँ हैं।

अैसी क्रियाएँ भाववाच्यः—

रामको सबेरे उठना होगा
तुमको, हमको, सभीको उठना होगा

\+ + +

भूतकालमें अकर्मक क्रियाएं कर्तृवाच्यः—

राम उठा, लड़के उठे, लड़की जागी, लड़कियाँ जागीं
हम जागे, तुम जागे, सभी जागे, पशु भागे

कहीं अकर्मक भाववाच्य भी होता हैः—

मैंने खाँसा, तुमने खाँसा, माँने खाँसा

कृदन्त होनेके कारण क्रिया सर्वत्र ऊपरके वाक्योंमें पुल्लिङ्ग एकवचन है। भूतकालमें सकर्मक कर्मवाच्य—

रामने रोटी खायी
लड़कीने फल खाया
हमने लड्डू खाया
तूने चने चबाये

सकर्मक भाववाच्य—

माँने तुम्हें बुलाया
लड़कीने माँको बुलाया
लड़कोंने बहनोंको बुलाया

गत्यर्थक सकर्मक कर्तृवाच्य—

माँ घर गयी
लड़का काशी गया
सीता गाँव आयी

'घर' 'काशी' तथा 'गाँव' कर्म हैं; परन्तु अिनके अनुसार क्रिया नहीं है—सर्वत्र 'कर्ता' के अनुसार है। 'घर' को अधिकरण न समझ लीजिएगा। 'घरमें रहता है' 'काशीमें पढ़ता है', यहाँ 'घर' तथा 'काशी' अधिकरण जरूर हैं, परन्तु गत्यर्थक क्रियाओंकी स्थितिमें ऊपर वे 'कर्म' हैं, अधिकरण नहीं—पहुँचनेकी जगह समझिये। वहाँ स्थिति नहीं है; पहुँचना है। स्थिति हो, तब अधिकरण।

\+ \+ \+

हेतुहेतुमद्भूत कालमें:—

सफाअी रहती तो हैजा न फैलता

कर्तृवाच्य क्रिया है। कहीं कर्मवाच्य भी—

रामने पुस्तक पढ़ी होती तो पास रखी होती।

कभी भाववाच्य—

'माँने सुशीलाको बुलाया होता, तो हमें भी मालूम होता'। पूर्वार्द्धमें भाववाच्य है, अुत्तरार्द्धमें कर्मवाच्य; देखिये—

तुमने लड़कीको पाल-पोसकर बड़ा किया होता, तो अुसे यह बात याद रहती।

कहीं पूर्वार्द्धमें भाववाच्य, अुत्तरार्द्धमें कर्तृवाच्य—

तुमने हमको देखा होता, तो हम जरूर रुक जाते।

अिस तरह 'वाच्य' का प्रकरण बहुत साफ है, मार्ग सीधा है। कर्तृ-प्रधान क्रिया, कर्तृवाच्य क्रिया, क्रियाका 'कर्तरि' प्रयोग; ये सब अेक चीज हैं। अिसी तरह कर्मवाच्य और 'कर्मणि प्रयोग' आदि। बात कुछ न होनेपर भी शब्दोंका घटाटोप घबराहटमें डाल देता है।

स्वाध्यायः—

१. वाच्य किसे कहते हैं?

२. क्रियाके समीपस्थ कारकोंके नाम बताअिये?

३. वर्तमानकालमें क्रिया किस वाच्यमें रहती है?

४. भविष्यत्कालके साथ विधि आज्ञाका सम्पर्क होनेपर क्रियाओंका वाच्य कैसा रहता है?

५. विभिन्न कालोंमें क्रियाके वाच्य बतलाअिये।

६. कर्तृवाच्य, कर्मवाच्य, भाववाच्यके अुदाहरण दीजिये।

आठवाँ अध्याय

प्रेरणा

कामका करनेवाला 'कर्ता' कहलाता है; जो करता है वही 'कर्ता' है। काम करनेवाले ('कर्ता') से जब कोअी वह काम (क्रिया) कराता है, तो अिस (काम करानेवाले) को 'प्रेरक' कर्ता कहते हैं--

'यशोदा कृष्णको सुलाती है'

असली कर्ता तो 'कृष्ण' हैं, जो सोते हैं। 'यशोदा' यहाँ 'प्रेरक' कर्ता कही जायँगी। 'सोना' मुख्य या मूल क्रिया है, जिसकी प्रेरणार्थक या प्रेरणात्मक क्रिया है--'सुलाना'। असली कर्ताका प्रयोग अिस ढंगसे हुआ है, मानों वह कर्म हो। वस्तुतः वह ('कृष्ण') कर्म नहीं, सोनेके (शयन-क्रियाके) कर्ता हैं। वे ही सोनेवाले हैं। परन्तु 'को' विभक्तिके साथ अिस ढंगसे प्रयोग हुआ है कि 'कर्म' की छाया जान पड़ती है। अिसीलिये अिसे (असली कर्ताको) अैसे स्थलमें 'गौण कर्म' कहते हैं--

'यशोदा कृष्णको मक्खन खिलाती है'

'खाना' की प्रेरणा 'खिलाना'। खाते हैं कृष्ण, अिसलिअे वे ही असली कर्ता। परन्तु 'प्रेरक' भी अेक तरहके कर्ता ही है--'गौण' कर्ता-समझिये। परन्तु अिस 'गौण' कर्ताका प्रयोग मुख्य कर्ताकी तरह होता है--'यशोदा खिलाती है'। खानेवाले (असली कर्ता) का प्रयोग 'कर्म' की तरह है; अिसलिअे 'गौण कर्म'। 'कृष्ण' अूपर गौण कर्म। असली कर्म है 'मक्खन'। खानेकी चीज (कर्म) वही है न! तो अूपर 'खिलाना' प्रेरणात्मक क्रिया द्विकर्मक हुअी--'कृष्ण' गौण कर्म और 'मक्खन' मुख्य कर्म। 'कर्तृवाच्य' है ही। विभक्ति लगती है गौण कर्ममें, परन्तु 'वाच्य' रहता है मुख्य कर्मके अनुसार, यदि प्रेरणामें कर्मवाच्य क्रिया हो—

यशोदाने कृष्णको **रोटी** खिलायी
माँने बच्चेको रोटियां खिलायीं
तुमने लड़कीको **मक्खन** खिलाया

विभक्ति ('को') लगी है गौण कर्ममें और क्रियामें परिवर्तन है, मुख्य कर्मके अनुसार ।

कहीं गौण कर्ममें 'से' विभक्ति लगती है, यदि खाने-पीनेकी चर्चा न हो; कुछ काम करानेकी बात हो--

यशोदा कृष्णसे चिट्ठी लिखाती है
मालिक **नौकरसे** तेल लगवाता है
पिता **पुत्रसे** दूकान कराता है

अिसे आप ('से' विभक्तिके कारण) 'गौण करण' भी कह सकते हैं । असली करण तो कलम आदि हैं लिखने-लिखाने आदिके, जो यहाँ विवक्षित नहीं हैं । 'को' के साथ प्रयोग होनेपर गौण कर्म, तो अैसे 'से' विभक्तिके साथ आनेपर 'गौण करण' । वस्तुतः करण तो कलम, चाकू, तलवार आदि जड़ पदार्थ होते हैं, चेतन नहीं । परन्तु प्रधानता जब प्रेरकपर आ जाती है, तो गौणता असली कर्तापर आती है ! गौण, चेतन होनेपर भी, अेक तरहसे जड़ ही समझा जाता है--जिधर घुमाओ अुधर घूमेगा; जैसा नचाओ, वैसा नाचेगा । अिसलिअे 'गौण करण' कह सकते हैं; परन्तु अैसा कहनेकी चाल नहीं । अिसे भी 'गौण कर्म' ही कहते हैं । क्रिया प्रेरक कर्ताके अनुसार ही चलती है । वही तो क्रियाके करानेमें स्वतंत्र है, चाहे जैसा कराये--'स्वतंत्र कर्ता'--क्रियाके करनेमें जो स्वतंत्र हो, वह 'कर्ता' । 'राम चिट्ठी लिखता है' । राम 'लिखने'में स्वतंत्र है । अिसलिये 'कर्ता' । परन्तु पैसे देकर अेक मजदूर रामसे चिट्ठी लिखाता है, तब स्वतंत्रता चली जाती है मजदूरपर । वह जो कुछ और जैसा कुछ लिखायेगा, रामको लिखना होगा । स्वातंत्र्यके अिसी परिवर्तनके कारण कर्तृत्वके व्यवहारमें परिवर्तन है । लिखानेमें मजदूर स्वतंत्र, अिसीलिये क्रिया अुसके अनुसार--

मजदूर रामसे चिट्ठी लिखाता है
मजदूरिन रामसे चिट्ठी लिखानी है

तो भी, लिखनेका काम वह असली कर्ता ही करेगा, चाहे उसे गौण कर्म कहो, चाहे गौण करण।

प्रेरणात्मक क्रियाकी बनावट

पढ़ता है--पढ़ाता है, करता है--कराता है, उठता है--उठाता है; आदि प्रयोगोंमें आप देख रहे हैं कि प्रेरणामें मूल धातुका अन्त्य स्वर दीर्घ हो जाता है। वस्तुतः स्वर दीर्घ नहीं होता; प्रत्युत 'आ' (१) प्रत्यय प्रेरणार्थक होता है--

'राम तवेसे चिमटा छुआता है'

'छू' मूल धातुसे 'आ' प्रत्यय प्रेरणामें है। जब अकारान्त धातु होती है, तो धातुका अन्त्य 'अ' आगे प्रत्ययके 'आ' से मिलकर सवर्ण दीर्घ हो जाता है--'पढाता है'।

यदि धातुका आदि स्वर दीर्घ हो, तो प्रेरणामें ह्रस्व हो जाता है--काढ़ता है--कढ़ाता है। संस्कृतमें मूल आद्य स्वर प्रेरणामें दीर्घ हो जाता है--'पठति'का 'पाठ्यति'। हिन्दीमें उसके विपरीत; उसलिये कि यहाँ अन्त्य दीर्घ होता है।

'ऐ' का ह्रस्व 'अि' होता है। 'राम पुस्तक देखता है' और 'गोविन्द रामको पुस्तक दिखाता है' कभी-कभी बीचमें 'ल' का आगम विकल्पसे हो जाता है--'दिखलाता है'। य, र, ल, व ये चार वर्ण कभी-कभी बीचमें आ कूदते हैं--'अन्तस्थ' हैं न! पीना है--पिलाता है, जीता है--जिलाता है।

'ल' का आगम अनावश्यक नहीं है। नारदजी बिना कामके कहीं नहीं जाते। अेक स्वरवाली धातुओंकी प्रेरणा 'ल' की मददके बिना अच्छी बन ही नहीं सकती। उसीलिये 'ल' का आगमन होता है, आद्य स्वर ह्रस्व करके--

खाता है—खिलाता है, सोता है--सुलाता है
रोता है—-रुलाता है, पीता है -- पिलाता है

'खेलता है' की प्रेरणा भी 'खिलाता है, बनती है। यहाँ 'ल' का आगम नहीं है; क्योंकि धातु 'खेल' द्विस्वर है। केवल आद्य स्वर ह्रस्व हो गया है।

नौकर लड़केको गेंदसे खिलाता है
भाभी भाभीको फल खिलाता है

यों प्रयोगसे अर्थ-भ्रम नहीं होता।

कभी मूल धातुको आद्य ह्रस्व स्वर दीर्घ हो जाता है—चूहा मरता है, बिल्ली चूहे को मारती है। परन्तु 'कटता है' की प्रेरणा 'काटता है' नहीं है। मूल क्रिया यहाँ 'काटना' है, 'कटना' नहीं। 'काटना' की प्रेरणा 'कटाना' होगी। 'काटना' मूल क्रिया का ही अेक प्रयोग-भेद 'कटना' है। यह प्रयोग-भेद अगले अध्याय में समझाया जाअेगा। 'पेड़ कटता है, में आप देखें, पेड़ कटने में 'स्वतंत्र' है क्या ? कोअी काटेगा, तब वह कटेगा। अिसलिये 'पेड़' कटने में स्वतंत्र नहीं, वह वस्तुतः कर्ता नहीं। कर्ता की तरह अुसका प्रयोग भर हुआ है। इसलिये 'कटना' की प्रेरणा 'काटना' नहीं है। 'काटना' की प्रेरणा 'कटाना' है।

प्रेरकका प्रेरक

कभी-कभी प्रेरकका भी प्रेरक सामने आता है, तब क्रियामें दूसरी प्रेरणा होती है।

राम पढता है (मूल क्रिया)
अध्यापक रामको पढाता है (प्रेरणा)
पिता अध्यापकसे राम पढ़वाता है (दूसरी प्रेरणा)

अिसी तरह अन्यत्र समझें। दूसरी प्रेरणामें भी कर्मकी व्यवस्था पूर्ववत् है। अर्थात् 'वाच्य' असली कर्मके अनुसार होगा और 'को' विभक्ति गौण कर्ममें लगेगी—

'पिताने अध्यापकसे रामको पुस्तक पढवायी'

अध्यापक 'गौण करण' हो गया। पिताके अधीन है सब पढना-पढाना। ौण कर्म 'राम' में 'को' विभक्ति लगी है। क्रियाकी गति मुख्य कर्मके नुसार है—

'पुस्तक पढ़वायी'
ग्रन्थ पढवाया
चारों वेद पढवाये

यदि अपेक्षित अर्थ देनेवाली कोई पृथक् धातु है, तब प्रेरणाका अनु-ावन नहीं होता। 'भेजना' पृथक् है; अिसलिअे 'जाना' का प्रेरणा-रूप ामने नहीं।

वाध्याय—

१ प्रेरक कर्ता किसे कहते है ?
२ प्रेरणात्मक क्रियाकी बनावटपर प्रकाश डालिये।
३. धातुका आदि स्वर दीर्घ होनेपर प्रेरणामे क्या हो जाता है ?
४ 'अन्तस्थ' वर्ण कहाँ आ जाते है ?
५. 'प्रेरक' का प्रेरक कब कैसे आता है ?
६. प्रेरणामें वाच्यका रूप क्या रहेगा ?
७. प्रेरणाका अनुधावन कब नही होता ?
८. नीचे लिखे वाक्य शुद्ध कीजिये :—

रामको भाअीने पढ़ाता है। नौकर लड़केने खेल खिलाता है।

नवाँ अध्याय

गौण कर्तृत्वमें क्रियाके प्रयोग

पिछले अध्यायमें देखा जा चुका है कि असली कर्ता कभी न कभी ही सही कर्म बन जाता है, प्रयोग-भेद है। ठीक अिसके विपरीत, कभी कर्म करण, अपादान तथा अधिकरण, ये चारों कारक 'कर्ता' बन जाते हैं। रहेंगे तो ये वही, जो कुछ हैं; परन्तु 'कर्ता' का बाना धारण कर लेते हैं। अेक अभिनय। लड़की नाटकमें अभिमन्यु बनकर आ जाती है, तो अुसी तरह बोलती-चालती है। जानते हुअे भी लोग कहते हैं---'भअी, अभिमन्यु खूब रहा'। अिसी तरह शब्दों का भी खेल होता है।

कर्म-कर्तृक क्रिया

'कर्ता' की विवक्षा न हो, तो नहीं बोलते। 'कर्ता' की अनुपस्थितिमें क्रिया 'कर्म' के अनुसार चलती है। तब 'कर्म' की आन-बान भी अैसी होती है कि 'कर्ता' ही जान पड़ता है। किसीने पूछा, क्या हो रहा है? अुत्तरमें—

'भोजन बन रहा है'

'कपड़े सिल रहे हैं'

अैसे प्रयोग होते हैं। 'बनाना' तथा 'सीना' मुख्य क्रियाअें हैं। जब तक कोअी बनानेवाला न हो, भोजन बन नहीं सकता। जब तक कोअी सीनेवाला न हो, कपड़े सिल नहीं सकते। बननेमें और सिलने में भोजन-कपड़े 'स्वतन्त्र' नहीं हैं, अिसलिअे वस्तुतः 'कर्ता' नहीं हैं। इसलिअे 'बनना' और 'सिलना' मूल क्रियाअें नहीं हैं। भोजन बनानेवाले का तथा कपड़े सीनेवाले का जिक्र नहीं है; परन्तु अुनका अस्तित्व तो है ही। 'कर्ता' के बिना क्रिया निष्पन्न कैसे होगी? परन्तु अुनका नाम लेना जरूरी न समझा, अतः कह दिया गया कि—

'भोजन बन रहा है', 'कपड़े सिल

वस्तुतः 'भोजन' कर्म है—बनाने की चीज है। अिसी तरह 'कपड़े' भी कर्म हैं; सिअे जानेकी हैं। परन्तु 'कर्ता' की अनुपस्थितिमें इन्होंने ही वैसा रूप धारण कर लिया और क्रियाको अपने पीछे चलाने लगे। अैसी स्थिति में क्रिया अकर्मक रहनी है। 'कर्म' तो 'कर्ता' के रूपमें है, तब 'सकर्मक' कैसे रहे ? सभी सकर्मक क्रियाअें 'कर्मकर्तृक' प्रयोग में अकर्मक हो जाती हैं :—

'भारतमें वेद पढे जाते हैं'

प्रेरणामें सभी क्रियाअें सकर्मक हो जाती हैं। मूलतः अकर्मक क्रिया भी सकर्मक हो जाती है; क्योंकि मूल 'कर्ता' कर्मकी तरह प्रयुक्त होता है, और मूलतः सकर्मक क्रियाअें 'द्विकर्मक' हो जाती हैं। अिसके विपरीत, यहाँ मूल सकर्मक क्रियाअेंभी अकर्मक हो जाती हैं; क्योंकि 'कर्म' आ जाता है 'कर्ता' के रूपमें। तो भी, समझमें आता ही है कि यह वस्तुतः कर्म है, कर्ता नहीं है। वैसा प्रयोग होनेके कारण कहने भरको 'कर्ता' है।

अकर्मक क्रियाके अैसे (कर्म-कर्तृक) प्रयोग नहीं होते; परन्तु अकर्मकके प्रेरणा-रूप जब (गौण कर्मसे) सकर्मक हो जाते हैं; तब अुन (प्रेरणा-रूपों) के वैसे प्रयोग जरूर —

'यहाँ दूसरा सिक्का चलता है'

यहाँ 'चलता है' कर्मकर्तृक प्रयोग है—'चलाना' क्रियाका। मूल क्रिया है—'चलना'। हम चलते हैं, तुम चलते हो। प्रेरणा हुई, 'चलाना'। 'पिता पुत्रको अच्छे रास्ते चलाता है' 'राजा सिक्का चलाता है'। सिक्का स्वयं नहीं चल सकता, चलाया जाता है। परन्तु कर्ताकी अविवक्षामें प्रेरणाके कर्म-कर्तृक प्रयोग होते हैं—'सिक्के चलते हैं'। गौण प्रयोगमें अन्त्य 'आ' ह्रस्व हो जाता है, 'चलाना' से 'चलना'। मूल क्रियासे जब गौण प्रयोग होता है, तब भी अन्त्य 'आ' ह्रस्व होता है—'बनाता है'—'बनता है'। आद्य स्वर तो ह्रस्व होता ही है—'सीता है'—'सिलता है'। बीचमें 'ल' का आगम।

परन्तु 'कुँआ चलता है' यहाँ प्रेरणासे गौण प्रयोग नहीं, मूल धातुसे है और कर्मकर्तृक नहीं, 'अपादान-कर्तृक' है। 'चलना' तो यहाँ अकर्मक क्रिया है। कुँअेसे पानी चलता है, निकलता है। 'कुँआ' अपादान है, जिसे कर्तृत्व प्राप्त हो गया है—कर्ता-रूपसे गौण प्रयोग है—'कुँआ चलता है', 'कुँआ चल रहा है'। मतलब वही निकलेगा, कि कुँअेसे पानी निकल रहा है।

करण-कर्तृक क्रिया

करणमें विशेषता बतानेके लिये, या 'कर्ता' की अविवक्षामें 'करणकर्तृक' प्रयोग होता है।

'वीर तलवारसे शत्रुओंको काटता है'

'वीर' कर्ता है', 'तलवार' करण है, काटने में। 'शत्रु' कर्म है। अब तलवारकी विशेषता प्रकट करनेके लिये—

'तलवार शत्रुओंको खूब काटती है'

यह गौण प्रयोग हुआ, करण ('तलवार') का कर्ताकी तरह प्रयोग है। अुसी के अनुसार क्रिया चलेगी और 'कर्तृवाच्य' कहलायेगी। करण कर्ताके रूपमें है न!

तलवार शत्रुओंको काटती है
भाला शत्रुओंको छेदता है
भाले शत्रुको छेदते हैं

चूँकि कर्म मौजूद है, अिसलिअे यथावसर कर्मवाच्य क्रिया भी होगी ही—

तलवारने शत्रु काटे
भालेने शत्रु छेदे

यदि शत्रु अेक ही हो, तो—

तलवारने शत्रु काटा
भालेने शत्रु छेदा

पर ऐसी क्रियाएं भाववाच्यमें अधिकतर चलती हैं--

तलवारने शत्रुको या शत्रुओंको काटा
भालेने शत्रुको या शत्रुओंको छेदा, छेद दिया, छेद डाला

'अपादान-कर्तृक' प्रयोग

'किसान कुँअेसे खेत सींचता है'

यहाँ 'कुँआ' अपादान है. करण नहीं। करण तो जल है, जो यहाँ अविवक्षित है। जलसे खेत सिंचते हैं, न कि कुँअेसे। 'कुँअेसे' को 'गौण करण' भले ही कह लो; पर असलमें वह अपादान है। उससे जल निकलता है। अपादानको कभी कर्ताकी तरह प्रयुक्त कर देते हैं, और उसीके अनुसार कर्तृवाच्यमें क्रियाएं चलती हैं--

यह कुँआ अेक अेकड़ जमीन सींचता है
ये चार कुँअे चार अेकड़ जमीन सींचते हैं

कर्मवाच्य—

अिस कुँअेने अिस वर्ष अितनी जमीन सींची
,, ,, ,, ,, अितने खेत सींचे

'अधिकरण-कर्तृक' प्रयोग

'अिस बटलोहीमें चार सेर भात बनता है'

कर्मकर्तृक क्रिया है, 'भात' कर्मका कर्ताकी तरह प्रयोग है। परन्तु अधिकरणको कर्ताकी तरह कर देते हैं, तब 'भात' कर्म बन जाता है और अैसा होते ही 'बनता' का 'बनाता' रूप हो जाता है--

'यह बटलोही चार सेर भात बनाती है'

यानी कर्मकर्तृकमें मूल धातुका आद्य स्वर ह्रस्व होता है; परन्तु करण, अपादान तथा अधिकरण जब कर्ताके रूपमें आते हैं, तब वह (स्वर) ज्योंका

त्यों रहता है–तलवार काटती है, कुँआ सींचता है, बटलोही बनाती है। कर्म कर्तृकमें-'शत्रु कटते हैं, खेत सिंचते हैं, भात बनता है' अिस प्रकार आद्य स्वर ह्रस्व हो जाता है।

कारकोंकी ही तरह 'काल' का भी कभी-कभी गौण प्रयोग होता है। 'कब आये' के अुत्तरमें कह देते हैं--'बस, चला ही आ रहा हूँ'। भूतके अर्थमें वर्तमानका प्रयोग; अिसलिअे कि आये देर नहीं हुअी है। अिसी तरह कब जाओगे ? के अुत्तरमें कह देते हैं--'जा ही रहा हूँ।' भविष्यत्के लिअे वर्तमान। मतलब यह है कि जानेमें देर नहीं है।

स्वाध्याय—

१. कर्मकर्तृक क्रिया समझाअिये ?

२. प्रेरणामे अकर्मक क्रिया सकर्मक क्यो हो जाती है ?

३ करण, अपादान तथा अधिकरणका कर्तृक प्रयोग समझाअिये ?

४ भाववाच्यमे किस प्रकारकी क्रियाअें चलती है ?

५ भूतकालके अर्थमे वर्तमानका प्रयोग कैसे होता है ?

६. नीचे लिखे वाक्योमे वाच्य परिवर्तन कीजिये :—

यह ट्रेक्टर ५० अेकड जमीन जोतता है।

ये चार आदमी चार अेकड जमीन जोतते है।

ये घोड़े अेक गाड़ी खीचते है।

नौकर चार बाल्टी पानी लाता है।

पुलिस चोर पकड़ती

दसवाँ अध्याय

नामधातु और संयुक्त क्रियाएँ

१—नामधातु

भाषामें धातुसे संज्ञाएँ भी बनती हैं—'कतरनी' 'बुहारी' आदि। अिसकी चर्चा आगे होगी। जैसे धातुसे संज्ञा बनती है, नाम बनाये जाते हैं; अुसी तरह कहीं नाम (संज्ञा) से धातु भी बनती हैं। फिर अुन धातुओंसे सभी तरहके क्रिया-रूप बनते हैं। अकर्मक-सकर्मक सभी भेद होते हैं—

'आँखें दुखती हैं' अकर्मक

'तुमने हाथ मटियाअे कि नहीं ?' सकर्मक

आँखें दुखती हैं—आँखोंमें दुख हो रहा है-पीड़ा है। 'हाथ मटियाअे ? "मिट्टी रगड़कर हाथ धोये ?" यह अर्थ। 'माटी' से 'मटियाना' नामधातु है, 'मिट्टी' से नहीं। नामधातुमें 'नाम' के आद्य दीर्घ स्वरको ह्रस्वता प्राप्त हो जाती है-हाथ-हथियाना, बात-बतियाना' खाता-खतियाना आदि।

अनुकरणात्मक शब्दोंसे—

'खटखट' करना-खटखटाना; 'मिनमिन' करना—मिनमिनाना; 'हिन-हिन' करना-हिनहिनाना। 'राम किवाड़ खटखटाता है', सकर्मक; और 'घोड़ा हिनहिनाता है' अकर्मक।

ध्यान रखनेकी बात है कि हिन्दी ठेठ अपने शब्दोंसे या संस्कृतके तद्भव शब्दोंसे ही 'नामधातु' बनाती है; पचाये हुअे विदेशी शब्दोंसे भी, 'दुःख' संस्कृत शब्दका 'दुख' तद्भव रूप; अुससे 'दुखना' नामधातु। तत्सम 'दुःख' से कभी भी हिन्दी नामधातु न बनायेगी। 'स्वीकार' का 'सकार' तद्भव रूप करके 'सकारना' नामधातु बनेगी; परन्तु 'स्वीकार' से नहीं। हुंडी सकारता है, होगा, 'हुंडी स्वीकारता है, नहीं। 'अुद्धारत हूँ

"परितोषता है' आदि कोभी लिखे, तो हिन्दीकी आत्मा ग्रहण न करेगी। जनमते-मरते हैं, लिखना ठीक है; 'जन्मते' लिखना गलत है।

विदेशी भाषाओंके पचाये हुअे शब्दोंसे भी हिंदी नामधातु बनाती है 'खर्च' से खर्चना। 'राम अपने कामके लिअे खर्चता भी खूब है।' 'बदलना' स्वतः किया है-'बदल' धातु है। 'बदल' 'बदला' 'बदली' अिसी धातुके कृदन्त रूप हैं।

संस्कृत तत्सम 'मौन' से 'मौनता है' आदि रूप न बनेंगे। मौन रहता है, मौन धारण करता है, अिस तरह प्रयोग होंगे। कुछ लोग संस्कृत तत्सम शब्दोंसे भी हिंदी 'नाम-धातु' बनानेकी चर्चा जब-तब करते रहते हैं, जो चर्चा भर ही है। 'अुद्धार' से 'अुद्धारता है' न होगा न कभी हुआ है। हाँ, 'पतित अुधारिबो तिहारे बाँट आयो है' यों 'अुद्धार' का 'अुधार' करके ब्रज-भाषा आदिमें नामधातु-प्रयोग हैं; पर' अुद्धारिबो' कहीं नहीं।

दही मथनेमें 'घमर-घमर' शब्द होता है। अिस अनुकरणात्मक शब्द 'घमर' से नामधातु बनाकर 'सूर' ने कृदन्त संज्ञा बनायी है—'त्यों-त्यों नाचैं मोहन ज्यों-ज्यों रअी-घमरको होयरी'।

२-संयुक्त क्रियाअें

यद्यपि 'जाता है', 'गया था', 'गया होगा', 'जाता होगा' आदि सभी क्रियाअें 'संयुक्त' ही हैं। 'है' 'गया' तथा 'था' जैसी कुछ ही क्रियाअें हैं, जिन्हें संयुक्त नहीं कहा जा सकता। परन्तु वे सब संयुक्त रूप प्रायः 'काल' भेदके लिअे हैं। अिस प्रकरणमें अुन संयुक्त क्रियाओंका अुल्लेख होगा, जिनमें प्रधान-सहायक भाव होता है और सहायक क्रियाका प्रयोग अर्थमें कुछ वैशिष्ट्य पैदा कर देनेके लिअे होता है।

संयुक्त क्रियाओंमें मुख्य क्रिया पहले और सहायक क्रिया बादमें रखी जाती है; परन्तु 'वाच्य' सहायक क्रियाके ही अनुसार रहता है—

'राम पूरी पुस्तक पढ़ गया'
सीता पूरा ग्रन्थ पढ़ गयी

'पढ़ना' मुख्य क्रिया है और 'जाना' की भूतकालिक 'गया' सहायक क्रिया है। सहायक क्रिया अैसे स्थलमें अपना 'अर्थ' छोड देती है। जब सहायक ही होकर आयी है, तब अपना 'अर्थ' छोडना ही होगा; अन्यथा सहायताका अर्थ क्या ? राम पुस्तक पढकर कहीं चला नहीं गया है, न सीता कहीं गयी है। 'गया' लगनेसे यह अर्थ निकला कि पुस्तक पढ़ कर पूरी कर दी गयी है, जो विशेष बात है।

मुख्य क्रिया 'पढ़' का पहले प्रयोग है और 'गया' या 'गयी' का बादमें। परन्तु क्रियाका 'वाच्य' अिसी सहायक क्रियाके अनुसार है। पहले कह आये हैं कि गत्यर्थक ('जाना'-'आना' अर्थ वाली) क्रियाअें सकर्मक होनेपर भी भूतकालमें 'कर्तृवाच्य' रहती हैं— 'राम काशी गया'– 'सीता शहर गयी'। शेष सकर्मक क्रियाअें भूतकालमें कर्मवाच्य या भाववाच्य रहती हैं— 'रामने पुस्तक पढी'– 'सीताने ग्रन्थ पढा'। अूपर अुदाहृत वाक्योंमें 'गया' (गत्यर्थक) क्रिया सहायक है; यद्यपि अुसने अपना अर्थ छोड़ रखा है। अतअेव वाच्य अुसी (सहायक क्रिया) के अनुसार है— 'कर्तृवाच्य'—

'राम पुस्तक पढ़ गया
लड़के भी पुस्तक पढ़ गये
लड़कियाँ वेद पढ़ गयीं

'सोना' अकर्मक है, 'लेना' सकर्मक है; परन्तु सहायक क्रियाने स्वार्थ-त्याग किया है, न कुछ लेना, न देना; भाववाच्य प्रयोगः—

तुमने सो लिया, हमने सो लिया
लड़कोंने सो लिया, लड़कियोंने भी सो लिया

कभी-कभी—'तुम सो लिये' (यानी 'सो चु ; ') यों कर्तृवाच्य भी प्रयोग होते हैं।

कभी-कभी 'लेना' तथा 'देना' सहायक क्रियाअें 'स्वार्थ' तथा 'परार्थ' व्यंजित करती हैं—

'तुमने चिट्ठी लिख ली ? '

'तुमने वह चिट्ठी लिख दी ?'

'लिख ली' अपने कामके लिअे और 'लिख दी' दूसरेके लिअे। अिसी तरह 'चिट्ठी पढ ली' और 'चिट्ठी पढ दी' आदि समझिअे। 'तुमने रोटी खा ली ?' अिसके साथ 'खा दी ?' कभी भी प्रयुक्त न होगा। 'तुमने रोटी बना ली ?' अिसके साथ 'तुमने रोटी बना दी ?' हो सकेगा। 'बना ली' अपने लिअे, और 'बना दी' दूसरेके लिअे।

सकर्मक क्रिया मुख्य हो और सहायक अकर्मक हो, तो भूतकालमें (अकर्मक सहायक) के अनुसार 'कर्तृवाच्य' प्रयोग होंगे, 'कर्मवाच्य' नहीं–

राम रोटी खा चुका

लड़की फल खा चुकी

'चुकना' क्रिया अकर्मक है, समाप्ति-सूचक। मुख्य क्रिया 'खाना' सकर्मक है। भूतकालमें अकर्मक 'चुकना' के अनुसार वाच्य कर्तृप्रधान है— 'राम...चुका'--'लड़की...चुकी'। ा कोअी मतलब नहीं। मुख्य क्रिया अपनी सहेली (सहायक) का मान रखती है, अुसीका मार्ग ग्रहण करती है।

'रामने पुस्तक पढ़ ली' कर्मवाच्य है; 'लेना' क्रिया सकर्मक है। 'सीताने वेद पढ लिया'—' ' के अनुसार 'लिया'। परन्तु—

'राम पुस्तकें लाया'

'सीता वेद लायी'

'लड़के फल लाअे'

यहाँ सर्वत्र क्रियाएं कर्तृवाच्य हैं। यह क्यों ? 'लाना' क्रिया सकर्मक है, तब फिर भूतकालमें यह कर्तृ-प्रधानता कैसे ? विचारणीय विषय है।

आप देख आये हैं कि गत्यर्थक क्रियाएं (सकर्मक होनेपर भी) भूतकालमें 'कर्तृवाच्य' रहती हैं--'राम काशी आया'--अिस वाक्यमें क्रिया 'काशी' के अनुसार स्त्रीलिंग न होकर 'राम' के अनुसार पुल्लिंग है। यही 'आना' क्रिया अलक्षित रूपसे 'लाना' में मौजूद है। अर्थात 'लाना' स्वयं संयुक्त क्रिया है--'लेना'+'आना'='लाना'। 'ले'+'आ'='ला'। 'ले' के 'ए' का लोप हो गया है। लेकर आया—'लाया'। सो, 'लाया' या 'लाता है' आदि रूप अेक संयुक्त क्रियाके हैं। अिसमें 'लेना' मुख्य क्रिया है और 'आना' सहायक क्रिया। यहाँ सहायक क्रियाने अपना अर्थ अेकदम छोड़ नहीं दिया, तो भी अीमानदारीकी साझेदारीमें घुल-मिलकर अैसी अेकता प्राप्त कर ली है कि किसी देखनेवालेको अिनकी अनेकताका पता ही नहीं चलता। हिन्दीकी अिस क्रियामें यह निसर्ग-सन्धि बड़े महत्वकी है। परन्तु मुख्य क्रियाने 'वाच्य' अिसी साझेदारके सिपुर्द कर रखा है। 'आना' के अनुसार ही भूतकालमें कर्तृवाच्य रूप होते हैं--

'लड़की फूल लायी'
'लड़के माला लाये'

कितनी बारीक बात है और निर्धारित नियमका कैसा अनुगमन है! ये नियम किसने बनाये ? किसी वैय्याकरणने ? नहीं। हिन्दीकी प्रकृतिने बनाये, ताने बनाये। अिनका जान लेना ही वैय्याकरणका काम है। पृथ्वीमें आकर्षण शक्ति न्यूटनने पैदा न की थी; वह स्वतः थी। तो अुसने अुसे जान भर लिया था और सबको बता दिया। यही बात भाषाकी गति तथा व्याकरणके विषयमें है।

यदि मुख्य क्रिया सकर्मक हो, और सहायक अेकदम अकर्मक, तब तो भूतकालमें कर्तृवाच्य प्रयोग होंगे ही--

राम ऐसी हरकत कर बैठा
सीता वेढंगा काम कर बैठी

'बैठना' सहायक क्रिया अकर्मक है, अविचारकारिता या सहसाकारिता व्यंजित करता है। अिसी तरह न जाने कितने अर्थ सहायक क्रियाओंके द्वारा व्यंजित होते हैं; क्या गिनायें जायँ ! बहुत स्पष्ट हैं, सामने प्रतिपद अुदाहरण मिलने हैं और विशेष व्यंजित अर्थ तुरन्त समझमें आ जाता है।

'देखो, पुस्तक पढ़ते रहना
सीता, अपना पाठ याद करती रहना
लड़को, स्कूल बराबर जाते रहना'

यहाँ 'रहना' सहायक क्रिया मुख्य क्रियाका (की) सातत्य, सत्यता प्रकट करती है, अेक हिदायत या आज्ञाके रूपमें। कर्ता सर्वत्र 'तुम' है, अनुच्चरित। मुख्य क्रिया सर्वत्र कृदन्त है और कर्तृवाच्य है—पढ़ते, करती, जाते। परन्तु सहायक क्रिया भाववाचक है; यद्यपि यह भी कृदन्त ही है। 'न' प्रत्यय है भाव-प्रधान, आज्ञार्थक। अुसमें संज्ञा-विभक्ति (ा) लगी हुअी है। कृदन्त क्रियाअें भाववाच्यकी स्थितिमें सदा पुल्लिंग-अेकवचन रहती ही हैं।

सातत्य-बोधन क्रियाअें कृदन्त 'रह' की सहायतासे भी बनती हैं—'सीता वेद पढती रहती है'। अुभयत्र कर्तृवाच्य कृदन्त 'है' तिङन्त। 'कर' धातुकी सहायतासे भी अेक तरहका सातत्य प्रकट किया जाता है, तब मुख्य क्रिया भाव-प्रधान कृदन्त 'य'-प्रत्ययान्त रहती है—'सीता सोया करती है', 'लड़के पुस्तक पढा करते हैं' में 'य' का लोप।

तुम्हें यह पुस्तक पढ़नी चाहिये
रामको यह पुस्तक पढ़नी चाहिये
सीताको यह पुस्तक पढ़नी चाहिये

'पढ़नी' मुख्य क्रिया कृदन्त कर्मवाच्य है—'पुस्तक' के अनुसार; परन्तु सहायक क्रिया 'चाहिये' तिङन्त भाववाच्य है—प्रथम पुरुष, अेक-वचन सदा। 'सीताको फल खाने चाहिये' 'रामको रोटियाँ खानी चाहिये।' कर्मके अनुसार लिंग-वचन मुख्य क्रियाअें हैं—'फल खाने' और रोटियाँ खानी।' 'चाहिये' अेक रस है।

अिसी तरह सर्वत्र अूहापोह कर लेना चाहिये।

स्वाध्याय:—

(१) सज्ञासे धातु किस प्रकार बनती है ?

(२) 'नामधातु' किस प्रकारके शब्दोंसे बनेगा ?

(३) 'घमर' शब्द किस प्रकार बना ?

(४) सयुक्त क्रियाअें क्या है ? अुनमें मुख्य क्रियाका प्रयोग किस प्रकार होता है ?

(५) 'लेना' तथा 'देना' क्रियाअें 'स्वार्थ' और 'पदार्थ' कैसे व्यक्त करती है ?

(६) सहायक क्रिया अकर्मक होनेपर भूतकालमें 'वाच्य' क्या रहेगा ?

(७) गत्यर्थक क्रियाअें भूतकालमें किस प्रकार प्रयुक्त होती हैं ?

(८) कृदन्त 'रह' की सहायतासे कौन-कौन क्रियाअें बनती है ?

ग्यारहवाँ अध्याय

पूर्वकालिक तथा क्रियार्थक क्रियाएँ

'पूर्वकालिक' तथा 'क्रियार्थक' क्रियाएँ भी 'संयुक्त क्रियाएँ' ही हैं। फिर भी, अिनमें कुछ विशेषता है।

१–पूर्वकालिक क्रियाएँ

पहले कोअी काम करके, तब दूसरा काम करनेकी बात हो, तो पहलेका काम प्रकट करनेके लिये धातुका जो रूप प्रयोगमें लाया जाता है, अुसे 'पूर्वकालिक क्रिया' कहते हैं—

पुस्तक पूरी पढ़कर घर चलूँगा
घर चलकर पूरी पुस्तक पढ़ो
अच्छी तरह सोकर काम करता हूँ
काम करके अच्छी तरह सोना ठीक है

सर्वत्र धातुके साथ 'कर' सहायक क्रिया लगाकर पूर्वकालिक क्रिया बनी है। परन्तु 'कर' की पूर्वकालिक क्रिया बनानेमें आगे 'के' लगता है—'करके'। 'कर-कर' में कुछ किरकिराहट-सी है—श्रवण-कटुता है। अिसीलिये 'कर' सहायक क्रियाके रूपको 'के' कर देते हैं। मुख्य क्रिया ज्यों-की-त्यों रहती है—'कर'। अकर्मक, सकर्मक, प्रेरणा आदि सभी तरहकी क्रियाओंमें यह सामान्य नियम है:—

'अध्यापकसे बच्चेको वेद पढ़वाकर विलायत भेजूँगा।'

पढ़वाकर प्रेरणाकी भी प्रेरणाका रूप है।

'माँ बच्चेको मक्खन खिलाकर प्रसन्न होती है'

'खिलाकर' खानेकी प्रेरणाका पूर्वकालिक क्रिया-रूप है। अधिकता प्रकट करनेके लिये पूर्वकालिक क्रियाको द्विरुक्ति होती है—

दूध पी-पीकर तू मस्त हो गया है
पुस्तक पढ़-पढ़कर तूने यही सीखा है!
अुसके घर जा-जाकर अिसने सम्मान खो दिया

यों स्पष्ट है। पूर्वकालिक क्रियाका तथा अन्तिम क्रियाका कर्तृ-भेद हीं होता। दोनोंका 'समान' कर्ता होना चाहिये। 'राम' पुस्तक पढ़कर विन्द सोयेगा' ऐसा प्रयोग नहीं होगा। ऐसी जगह 'न'–प्रत्ययान्त पहले की क्रिया रहती है—भाववाच्यः—

'रामके पुस्तक पढ़नेपर (पढ़ लेनेपर, पढ़ चुकनेपर)
गोविन्द सोयेगा'

'पर' अव्यय साथ रहता है, तब प्रत्ययान्त (पुं-विभक्तिके) 'आ' ा) को 'ए' हो जाता है; जैसे—'लड़केपर'। अकर्मक-सकर्मक सभी ऐसी क्रियाओंमें भाववाच्य 'न' प्रत्यय रहता है, जहाँ 'कर्तृभेद' हो। 'समान-र्तृक' क्रियाओंके पौर्वापर्यमें, पूर्वकालिक क्रिया बनानेके लिये धातुमें वही का' सहायक क्रिया लगाते हैं।

क्रियार्थक क्रियाएँ

जब किसी क्रियाके लिये कोअी क्रिया होती है, तो अुसे 'क्रिया-र्थक क्रिया' कहते हैं। पौर्वापर्य यहाँ भी होता है; परन्तु प्रयोजन-हेतुकी अभिव्यक्ति होती है। प्रयोजनकी क्रियाका प्रयोग पहले होता है, यद्यपि अिसकी निष्पत्ति बादको होती है। हेतु-भूत क्रियाका प्रयोग बादमें होता है; यद्यपि अुसकी पूर्व-निष्पत्ति स्वाभाविक है—पहले हेतु, फिर हेतुमान्। शब्द-स्थिति यों रहती है—

राम वेदान्त पढ़ने काशी गया था
तुम क्या नौकरी करने बम्बअी जाओगे?
लड़कियाँ कसीदा सीखने शिल्पशाला जाती हैं

पढ़नेके लिये गया, नौकरी करनेके लिये जाओगे, कसीदा सीखने के लिये जाती हैं। हेतु-क्रियाएँ सर्वत्र अन्तमें हैं और 'हेतुमत्' (प्रयोजन-वती) पहलें हैं, जो भावप्रधान 'न'–प्रत्ययान्त हैं। सर्वत्र 'आ' को 'ए' आप देख रहे हैं। 'पर' लगा दें, तो अर्थ बदल जायगा—

'राम वेदान्त पढ़नेपर राजी हो गया',

यहाँ हेतु-प्रयोजनकी बात नहीं है। रामने वेदान्त पढ़ना स्वीकार कर लिया है।

जिसी तरह—

'बी० ए० पास कर लेनेपर एम० ए० की बात सोचूँगा'

यहाँ भी हेतु-प्रयोजन नहीं; वरन् क्रियाओंमें पौर्वापर्य्य विवक्षित है—बी० ए० पास करके एम० ए० की बात सोचनी है। पास करना पहला काम, सोचना दूसरा काम। परन्तु 'पर' लगाकर पूर्वकालिक क्रिया जोर देनेके लिये बना दी गयी है—बी० ए० कर लेनेपर ही आगेकी बात सोचनी है।

साधारणतः सभी धातुओंमें 'कर' लगाकर पूर्वकालिक और भाव-प्रधान 'न' प्रत्ययसे क्रियार्थक क्रिया बनती है।

स्वाध्याय :—

(१) पूर्वकालिक क्रिया किसे कहते हैं और अुसे किस प्रकार बनाया जाता है ?

(२) पूर्वकालिक क्रियाकी द्विरुक्ति कहाँ होती है ?

(३) समान कर्त्ता कहाँ होता है ?

(४) कर्तृभेद होनेपर कौन-सा प्रत्यय लगता है ?

(५) समान कर्त्तृक क्रियाओंके पूर्वकालिक रूप बनानेमें क्या लगाते हैं ?

(६) हेतु और हेतुमत क्रियाओंमें 'पर' लगानेका परिणाम क्या होगा ?

(७) धातुओसे क्रियार्थक बनानेका अुपाय बताअिये ?

बारहवाँ अध्याय

विशेषण और सर्वनाम

संज्ञा तथा क्रियाका परिचय मिल चुका। अब अिनके संगी-साथी (विशेषण तथा सर्वनाम) भी देखिये। अिनसे विशेषता आती है और वाक्य चुस्त हो जाता है।

१–विशेषण और अुसके भेद

जो किसीकी विशेषता बताये, वह 'विशेषण'। नाम ही अैसा है कि परिभाषाकी जरूरत नहीं। विशेषणके बिना वस्तु या भावकी विशेष प्रतिपत्ति होती नहीं है—'लड़के अूँचे पदोंपर पहुँचते हैं' और 'लड़के नीचे गिरते हैं, दुख भोगते हैं' अिन दो वाक्योंमें 'लड़के' सामान्य प्रयोग है। कुछ पता नहीं चला कि कैसे लड़के अूँचे अुठते हैं और कैसे नीचे गिरते हैं। परन्तु विशेषणके साथ—

'सदाचारी और परिश्रमी लड़के अूँचे अुठते हैं',

'दुराचारी और आलसी लड़के नीचे गिरते हैं',

यों 'लड़के' सविशेष कर देनेपर बात स्पष्ट हो जाती है। विशेषण सभी तरहकी संज्ञाओंमें लगता है—

अच्छे लड़के (जातिवाचक संज्ञाके साथ)

स्वास्थ्यप्रद मिठास (भाववाचक संज्ञाके साथ)

सर्वनाम तथा व्यक्तिवाचक संज्ञाओंके साथ विशेषण विधेय रूपसे आता है, अुद्देश्य-रूपसे नहीं।

'तू बहादुर है, अिसमें सन्देह नहीं'

यहाँ 'बहादुर' विधेयरूपसे है। अिसी तरह—

'राम चतुर लड़का है'

अिस वाक्यमें 'चतुर' तथा 'लड़का' ये दोनों रामके विधेयात्मक विशेषण हैं। यानी जाति-वाचक संज्ञाका भी विशेषण रूपसे प्रयोग होता है।

'राम चतुर है' 'तू मूर्ख है' इत्यादिमें जो यह विधेयात्मक विशेषण है, उसे ही लोग 'पूर्ति' तथा 'पूरक' कहते है ! ये नाम अनावश्यक हैं। पूरक तो वाक्यमें कर्ता-क्रिया आदि सभी अंग हैं। अेकके बिना भी वाक्य लँगड़ा हो जायगा।

कभी-कभी विशेषणका भी विशेषण दिया जाता है--

'तुमने अत्यन्त मधुर फल भेजे थे'

यहाँ 'फल' का विशेषण 'मधुर' है और 'मधुर' का विशेषण है 'अत्यन्त'। विशेषणके विशेषणको कोअी-कोअी 'अन्तर्विशेषण' कहते हैं। पता नहीं, 'अन्तर्विशेषण' क्यों कहते हैं। यदि 'विशेषणान्तर' कहें, तो भी ठीक नहीं; क्योंकि दूसरे विशेषणको 'विशेषणान्तर' कहेंगे; जैसे—

'बड़े-बड़े, मीठे और सस्ते खरबूजे हम लाये'

'खरबूजे' के तीन विशेषण हैं—'बड़े-बड़े', 'मीठे' और 'सस्ते'। अिन तीनोंका सम्बन्ध खरबूजोंसे है। 'विशेषणका विशेषण' और चीज है—

'खूब मीठे खरबूजे लाये'

यहाँ 'खूब' विशेषण है, 'मीठे' का—विशेषणका विशेषण, कुछ नाम देना ही है, तो 'प्रविशेषण' कहो; 'अन्तर्विशेषण' नहीं।

'मीठे और खूब (अत्यधिक) खरबूजे लाये'

यहाँ 'मीठे' तथा 'खूब' दोनों ही खरबूजोंके विशेषण हैं और अुद्देशयात्मक हैं।

'खरबूजे मीठे लाना और खूब लाना'

यहाँ खरबूजोंके विशेषण विधेयात्मक हैं—'मीठे' और 'खूब'।

संस्कृत तत्सम शब्द जब विशेषणके रूपमें आते हैं, तो कोअी परिवर्तन नहीं होता--

'मैं मधुर फल लाया' 'मधुर फल स्वास्थ्यप्रद होते हैं'
'मधुर द्राक्षा किसे न रुचेगी ?' 'मधुर प्रकृति सबको अच्छी लगती है'

परन्तु हिंदी अपने पुंविभक्ति-युक्त विशेषणोंमें परिवर्तन करती है—अच्छा लड़का, अच्छे लड़के, अच्छी लड़की। अेकवचनका भी अैसा पुंविभक्ति-युक्त विशेषण अेकारान्त हो जाता है, यदि विशेषणके आगे कोअी विभक्ति हो--

अच्छे लड़केने, अच्छे लड़केको, अच्छे लड़केसे

बहुवचनमें भी--

'अच्छे लड़कोंने, अच्छे लड़कोंको, अच्छे लड़कोंसे'

विभक्तिके विषयमें भी अेकारान्त रूप हो जाता है--

लड़की अच्छे घर जायगी

हम अपने घर मिलेंगे

'घर' कर्मकारक है--'को' का आना-जाना रहता है अिस कारकमें; अिसीलिये 'अच्छे घर'। दूसरे अुदाहरणमें अधिकरणत्व है--'में' या 'पर'का विषय है। अिसीलिये 'अपने घर'। अुभयत्र अेकवचन है।

क्रियाविशेषण

कोअी शब्द जब क्रियाकी विशेषता बतलाता है, तो 'क्रिया-विशेषण' कहलाता है।

लड़का पढ़ता है, लड़की गाती है, बच्चे चिल्लाते हैं

यहाँ तीनो क्रियाअें निर्विशेष हैं--पढ़ने, गाने तथा चिल्लानेकी कोअी विशेषता नहीं। परन्तु—

१-लड़का खूब पढ़ता है

२-लड़की अच्छा गाती है

३-बच्चे जोरसे चिल्लाते हैं

अिन वाक्योंमें वे क्रियाअें विशेषता लिये हुअे हैं। 'खूब' 'अच्छा' तथा 'जोरसे' क्रिया-विशेषण हैं।

क्रिया-विशेषणका भी विशेषण होता है-- 'लड़की बहुत मीठा गाती है'।

यहाँ 'मीठा' का विशेषण 'बहुत' है--अिसे 'प्रविशेषण' कह लीजिअे।

क्रिया-विशेषण अव्यय हो, तब तो कोअी बात ही नहीं, अन्यथा सदा पुल्लिंग अेकवचन रहता है, क्रियाका चाहे जो 'पुरुष' या लिंग-वचन आदि हो—

लड़का अच्छा गाता है, लड़के अच्छा गाते हैं,
लड़कियाँ अच्छा गाती हैं

अिसके अिस स्वरूपमें कोअी परिवर्तन नहीं होता, अव्यय-सा रहता है। परन्तु अव्यय ही क्रिया-विशेषण नहीं। जिन अव्ययोंसे क्रियाकी विशेषता प्रकट नहीं होती, अुन्हें भी लोगोंने 'क्रिया-विशेषण' लिख दिया! अिधर, अुधर, यहाँ, वहाँ आदि अव्यय क्रिया-विशेषण नहीं हैं। अिधर-अुधर आदि दिशावाचक अव्यय हैं और 'यहाँ वहाँ' आदि स्थानवाचक, अधिकरण-प्रधान। अिधर गया—अिस ओर गया! न 'अिधर' क्रिया-विशेषण, न 'अिस ओर'। अिसी तरह 'राम यहाँ पढ़ता है' में 'यहाँ' शब्दसे पढ़नेकी कोअी विशेषता नहीं मालूम होती। तब क्रिया-विशेषण कैसा? यदि 'अिधर' तथा 'यहाँ' क्रिया-विशेषण हों, तो फिर 'अिस ओर' तथा 'अिस जगह' शब्द भी दावा करेंगे। कारण, क्रिया-विशेषणके लिये यह तो है ही नहीं कि अव्यय सब क्रिया-विशेषण हैं, और शब्द नहीं। जो पढ़ाये, वह अध्यापक। ब्राह्मण पढ़ाये न, तो अध्यापक कैसा? दूसरा कोअी पढ़ाये, तो वह अध्यापक क्यों नहीं? अँग्रेजी व्याकरणके अन्धानुकरणका फल है 'यहाँ' आदिको क्रिया-विशेषण मानना!

२—सर्वनाम

सबके नाम--'सर्वनाम'। राम, सीता, हम, तुम, सभी अपनेको 'मैं'-'हम' कहते हैं। 'तू' 'तुम' आदि सबके नाम बन जाते हैं—नामकी जगह आते हैं। सर्वनामोंके भेद आप जानते ही हैं। यहाँ, वह निर्देशक सर्व-

नाम हैं, सन्निहित और दूरस्थके लिये। कोअी सर्वनाम सामान्य-बोधक होते हैं—'कोअी' 'कुछ'। अिन्हें 'अनिश्चय-वाचक' भी कहते हैं, जो ठीक नहीं। निश्चय तो है—'कोअी आ रहा है'। परन्तु विशेष कुछ पता नहीं कि कौन आ रहा है। 'दूधमें कुछ पड़ा है'—निश्चय ही ज्ञान है कि कुछ पड़ा है; परन्तु विशेष पता नहीं कि क्या पड़ा है। सामान्य ज्ञान निश्चित है, विशेष नहीं। सो, ये 'सामान्य-बोधक' सर्वनाम हैं।

संस्कृतकी ही तरह हिन्दीमें भी 'मैं–हम' तथा 'तू–तुम' स्त्रीलिङ्ग-पुल्लिङ्गमें समान रहते हैं। अिसी लाअिनपर चलकर हिन्दीमें यह, वह, कौन आदि सभी सर्वनामोंका स्त्रीलिङ्ग पुल्लिंगमें समान रूप है। संस्कृतमें अैसा नहीं। वहाँ 'अिदम्', 'अेतद्', 'तत्' तथा 'किम्' के तीनों लिंगोंमें रूप पृथक् चलते हैं।

स्वाध्याय:—

(१) विशेषण किसे कहते हैं ?
(२) विशेषणका प्रयोग किस प्रकारकी संज्ञाओंमें होता है ?
(३) विधेयक विशेषण किसे कहते हैं ?
(४) विशेषणका विशेषण क्या है ?
(५) हिन्दीमें संस्कृतके तत्सम शब्दोंका प्रयोग विशेषणमें किस प्रकार होता है ?
(६) क्रिया-विशेषण किसे कहते हैं, अुदाहरणसहित समझाअिये ?
(७) क्रिया-विशेषणमें लिंग और वचन किस प्रकार रहते हैं ?
(८) 'सामान्य बोधक सर्वनाम' क्या है ?
(९) हिन्दीमें लिंगका सर्वनामपर क्या प्रभाव पड़ता है ?

तेरहवाँ अध्याय

कृदन्त, तद्धित, समास

अेक शब्दसे दूसरे शब्द बनते-ढलते रहते हैं। धातुसे नाम, नामसे धातु, संज्ञासे विशेषण और विशेषणसे संज्ञा, संज्ञासे संज्ञा और अनेक शब्दोंको मिलाकर अेक 'शब्द' या पद। अिन सब प्रक्रियाओंके नाम कृदन्त, तद्धित तथा समास आदि हैं। कृदन्त प्रत्ययोंकी कुछ क्रियाओंका परिचय पीछे दिया गया है। यहाँ कृदन्त संज्ञाओंका अुल्लेख होगा।

१–कृदन्त-प्रकरण

संस्कृत कृदन्त संज्ञाअें हिन्दीमें ज्यों-की-त्यों चलती हैं—अध्यापक, पाठक, विक्रेता, नेता आदि। अिनके अतिरिक्त हिन्दी अपनी धातुओंसे अपने प्रत्यय लगाकर भी संज्ञा-विशेषण आदि बनाती है। संस्कृत धातुओंमें अपने प्रत्यय नहीं लगाती, न अपनी धातुओंमें संस्कृत प्रत्यय ही लगाती है। क्वचित तद्रूपता है भी, तो अपनी पुंविभक्ति लगाकर विशेषता पैदा कर दी। 'पठन-पाठन' तो हिन्दीसे चलता ही है; परन्तु अपनी 'पढ' धातुसे 'न' प्रत्यय करके और अुसमें संज्ञा-विभक्ति लगाकर—'पढ़ना–पढ़ाना' भी चलता है। अिसी तरह करना–कराना, रोना–धोना, सीना-पिरोना आदि धातुज भाव-प्रधान संज्ञाअें बनती-चलती हैं, जो सदा पुल्लिंग-अेकवचन रहती हैं।

संस्कृतकी 'भावना' 'विचारणा' 'धारणा' आदि कृदन्त भाववाचक संज्ञाअें हिन्दीमें भी चलती हैं; साथ ही हिन्दी अपनी धातुओंमें अपने प्रत्यय लगाकर भी स्त्रीलिंग भाववाचक संज्ञाअें बनाती है। पुंविभक्ति हिन्दीकी 'आ' है; अिसलिये (हिंदीकी) कृदन्त स्त्रीलिंग (भाववाचक) संज्ञाअें आकारान्त नहीं बनती—अकारान्त बनती हैं—लूट, खसोट, पहुँच, चमक, समझ, जाँच, पड़ताल, भिड़न्त, रटन्त आदि।

'न' प्रत्ययसे कर्मवाच्य पुल्लिंग 'बिछौना' आदि—जो बिछाया जाय, वह 'बिछौना'।

करण-प्रधान—'कतरनी' स्त्रीलिंग, जिससे कतरा जाय, वह 'कतरनी'। जिससे झाड़ा-बुहारा जाय, वह 'झाड़ू' 'बुहारी'। अेक जगह 'ऊ' और दूसरी जगह 'ई' प्रत्यय।

कर्तृ-प्रधान विशेषण—'अुड़न'-अुड़नेवाला। 'अुड़न-खटोला'।

अधिकरण प्रधान 'क' प्रत्यय, स्त्रीलिंग-'बैठक'—जहाँ विशेषरूपसे बैठा जाय, वह 'बैठक'। 'क' भावप्रधान भी होता है—'अिनकी बैठक-अुठक अच्छी नहीं है'। 'क' प्रत्यय पुल्लिंगमें भी चलता है—'बैठका'। अिसी तरह सब समझिये।

२—तद्धित प्रकरण

संस्कृतके तद्धित-प्रयोग 'पाण्डित्य' 'मनुष्यत्व' आदि हिन्दीमें पुल्लिंग चलते हैं। भाववाचक प्रत्यय हिन्दीके भी हैं— पंडिताअी, चतुराअी, महँगाअी। ये 'पंडित' आदि विशेषणोंसे स्त्रीलिंग 'आअी' भावप्रधान प्रत्ययसे बने हैं।

हिंदी तद्धित प्रत्यय लगनेपर मूल शब्दका आद्य स्वर प्रायः ह्रस्व हो जाता है—'ठाकुर'-'ठकुराअी'। 'दाढ़ी' से 'दढ़ियल' और 'डाढ़ी' में 'डढ़ियल' 'दाढ़ी' संज्ञासे 'दढ़ियल' विशेषण बना, आद्य 'आ' ह्रस्व हो गया। 'ठाकुर' से 'ठकुराअी' भाववाचक संज्ञा बनती है।

छोटापन प्रकट करनेके लिये 'अिया' स्त्रीलिंग प्रत्यय होता है—छोटी खाट, 'खटिया' और छोटा लोटा 'लुटिया'। 'आ' को 'अ' तथा 'ओ' को 'अु' ह्रस्व हो गया है। भाग-भँगेड़ी, गाँजा-गँजेड़ी, लाठी-लठैत, काजर-कजरौटा आदिमें ह्रस्व-विधान स्पष्ट है।

३—समास

समासमें भी संस्कृतका अनुकरण है। अपनी बात यह कि आद्य दीर्घ स्वर ह्रस्व हो जाता है—

अेक तार जिस बाजेमें हो, वह 'अिकतारा'।

दो पहर बीत जानेकी बेला—'दुपहर', 'दुपहरी'।

'अेकतारा' या 'दोपहरी' लिखना अैसा ही है, जैसे कि दूधकी बनी बढ़िया रबड़ीको पानीमें घोलकर दूध-सा बनाकर काममें लाना। 'अिकतारा' में 'अे' के ह्रस्व 'अि' और आगे पुंविभक्ति 'अिकतारा'। अन्य संख्या-वाचक शब्दोंमें—सतनजा, पँचनेल, अठपहलू आदि आद्य-ह्रस्व हैं। 'चार' को 'चौ' तथा 'तीन' को 'ति' हो जाता है—'चौगुना', 'तिगुना'।

कभी-कभी किसी शब्दका समासमें पूर्व प्रयोग हो जाता है—पेटभर-'भरपेट'।

संस्कृत शब्दोंके साथ प्रायः संस्कृत शब्दोंका ही समास होता है—'पञ्चवर्षीय' योजना, 'सप्तसूत्री' कार्य-क्रम। 'पाँचवर्षीय' या 'सातसूत्री' बेढंगे प्रयोग होंगे। हाँ— 'पाँचसाला' कोअी लिखे, तो और बात है।

जो विदेशी शब्द अेकदम रूढ़ हो गये हैं, अुनके साथ संस्कृत शब्द कभी-कभी जम भी जाता है- 'जिलाधीश'। परन्तु अिसके अनुकरण पर 'तहसीलाधीश' या 'मदरसाधीश' आदि नहीं हो सकते। 'कांग्रेस' भी रूढ़ है; अिसके आगे 'प्रेसीडेंट' लिखनेमें राष्ट्रभाषाका प्रेम बाधा डालता है, तब 'अध्यक्ष' रखते हैं। कांग्रेसके अध्यक्षके कहनेपर मैं मान गया, अैसा कहना लिखना बुरा लगता है; अिस लिये 'कांग्रेस' से 'अध्यक्ष' का समास कर देते हैं- 'कांग्रेस-अध्यक्ष'। समास तो कर दिया पर सन्धि न होगी। कर दो, तो 'कांग्रेसाध्यक्ष' भद्दा लगेगा। भाषाकी प्रकृति है।

धातु या कृदन्त क्रियाओंका भी, हिन्दीमें, परस्पर समास होता है- 'पुस्तक छप चुकी है', 'राम पढ़ लिख सकता है', 'वह यहाँ आता-जाता है' अित्यादि। संयुक्त क्रिया 'राम यहाँ आ जाता है' पृथक् चीज है। वहाँ गुण-प्रधान भाव है। यहाँ दोनों प्रधान हैं- 'द्वन्द्व' समझिये।

स्वाध्याय :—

(१) शब्द या पद कैसे बनता है ?

(२) संस्कृतकी कृदन्त संज्ञाका हिन्दीमें प्रयोग किस प्रकार होता है ?

(३) समास कैसे बनाये जाते हैं ?

चौदहवाँ अध्याय

अव्यय और उपसर्ग

वाक्यमें अेक और तरहके शब्द काममें आते हैं, जिन्हें 'अव्यय' कहते हैं।

संस्कृतके न, पश्चात्, प्रायः, पुनः, अतः, वृथा आदि अव्यय ज्यों के त्यों हिन्दीमें चलते हैं। अेवम्, सायम् आदि, अनुसारके साथ 'अेवं'-सायं' करके चलते हैं। 'प्रातः-सायं'। कोअी-कोअी व्यंजनान्त भी लिख देते हैं।

हिन्दीने जिस अर्थमें अपने अलग अव्यय बना लिये हैं, अुस अर्थके लिये साधारणतः संस्कृत अव्ययका प्रयोग नहीं होता। 'अिधर' की स्थितिमें 'अितः' नहीं चलनेका। हिन्दी अपने अव्ययोंमें अपनी विभक्ति भी लगाती है–'अिधरसे जाओ'। संस्कृत अव्ययोंमें हिन्दी संस्कृतका ही कानून चलने देती है– कोअी विभक्ति आदि नहीं लगाती। 'पश्चात्से' न होगा, 'पीछेसे' होगा। 'शनैःसे' कभी भी न होगा; पर 'धीरेसे' होगा।

यहाँ-वहाँ, अिधर-अुधर, जहाँ-तहाँ, ये सब सर्वनामोंसे बने अव्यय हैं। 'यह' से 'यहाँ'– अिस जगह। 'वह' से 'वहाँ'– अुस जगह। अिसी तरह 'अिधर-अुधर' और 'जहाँ-तहाँ' आदि हैं। 'यत्र-तत्र' भी चलता है— 'यत्र-तत्र अुनके विचार बिखरे पड़े हैं।' परन्तु अकेले 'यत्र' या 'तत्र' (अलग-अलग) न आअेंगे। 'जहाँ तुम कहोगे, वहाँ हम मिलेंगे' अिसकी जगह 'यत्र तुम कहोगे, तत्र हम मिलेंगे' अैसा न होगा। जहाँ 'अपने' अव्यय नहीं हैं, वहीं संस्कृतके अव्यय हिन्दीके काममें आते हैं।

जरूर, बिलकुल, खूब, जल्दी आदि कुछ अव्यय फारसी आदि (अेशियाके अन्य देशोंसे) भी आकर हिंदीमें मिल गये हैं और चल भी गये हैं। परन्तु योरपीय (अँग्रेजी आदि भाषाओंके) अव्यय हिन्दीने कतअी नहीं लिये। हाँ, कुछ संज्ञाअें (कोट, बटन, स्टेशन आदि) जरूर ली हैं और अुन्हें पचा लिया है। फारसी आदि अेशियाअी भाषाओंसे तो विशेषण भी

ले लिये हैं, पर अंग्रेजीसे यह भी नहीं। समीप-दूरका सवाल है। फारसी हमारे बहुत नजदीक है, अंग्रेजी बहुत दूर। नजदीकी फिर भी नजदीकी ही है!

अुपसर्ग

हिन्दीमें संस्कृतके प्र, परा, अप, सम्, अनु, अव, वि, आ (आङ्) नि, अधि, प्रति आदि सभी अुपसर्ग काममें आते हैं; परन्तु संस्कृत (तत्सम) शब्दोंमें ही अिनका प्रयोग होता है। संस्कृत क्रियाओंके साथ अुपसर्गोंका अत्यधिक प्रयोग होता है; परन्तु हिन्दीकी क्रियाएँ कभी भी अपने साथ अुपसर्ग नहीं लगाती।

संस्कृतके सभी अुपसर्ग तत्सम रूपमें व्यवहृत होते हैं, तत्सम (संस्कृत) शब्दोंमें ही। किसी-किसी अुपसर्गको हिन्दीने तद्भव भी कर लिया है; जैसे 'अुत्' को 'अु' और 'निर्' को 'नि'। 'अुचक्का' 'अुजड्ड' 'अुठल्लू' 'अुजड़ना' आदिमें 'अु' देख रहे हैं। 'जड़' का 'जड्ड' है। तभी तो 'अु' लगा, अन्यथा 'अुजड्ड' होता। 'अुजड़ना' की व्युत्पत्ति लिखते समय 'प्रामाणिक हिंदी कोश' के निर्माताने केवल प्रश्नसूचक चिह्न (?) लिख दिया है! यह नामधातु है, संस्कृत नाम-धातु (अुन्मूलयति) के ढंगपर गढ़ी हुअी। 'अुन्मूलन' मूलसे अुखाड़ना। हिन्दीने 'अुत्' का 'अु' कर लिया, क्योंकि वह अपनी नामधातुमें संस्कृत अुपसर्ग लगाती नहीं और संस्कृत तत्सम शब्दोंमें अपनी नामधातु बनाती नहीं। अिसलिये 'मूल' की जगह अपना शब्द 'जड़' रखा और तब अुसके आगे 'अु' जोड़ दिया - 'अुजड़ना'-'अुन्मूलन'। यह है हिन्दीकी प्रकृति। 'अुजाड़' भाववाचक संज्ञा तथा 'अुजड़ा' 'अूजड़' आदि विशेषण अिसीके कृदन्त रूप हैं। 'नाम' धातु बन गया, तब अुससे कृदन्त भी।

अिसी तरह 'निखट्टू' आदि कृदन्त विशेषणोंमें 'नि' तद्भव रूप है 'निर' का। यह संस्कृतका 'नि' नहीं है। तत्सम अुपसर्ग तो हिन्दी अपने शब्दोंमें लगाती ही नहीं। यह 'खट्टू' क्या है, समझे? पंजाबीमें 'बटना'

तथा 'खटना' ये दो क्रियायें हैं, जिनका प्रयोग हिन्दीमें नहीं होता। 'खटना' का कृदन्त रूप 'नि' के साथ है 'निखट्टू'। यह शब्द पंजाबीमें कतई नहीं चलता, हिन्दीमें खूब चलता है। 'बटना' कहते हैं, बेचनेको। 'कीबट्टया' कितनेका माल बेचा ? 'चार रपये बट्टे मित्रौं' मित्र, चार रुपये-का माल बेचा। 'तहाँ खट्या की ?' तो मुनाफा क्या कमाया ? 'खटणाकी सी ! हिकरपैय्या खट्टलित्ता !' अेक रुपया कमा लिया ! जो कुछ कमाता-धमाता न हो, अुसे हिन्दीमें 'निखट्टू' कहते हैं। 'क्या करे बीबी निखट्टू मियाँ पायकै ?'

कहीं धातुका आख्यात-रूपसे प्रयोग और कहीं कृदन्त-संज्ञा रूपसे पहले भी देश या प्रदेशके भेदसे होता था। महर्षि यास्कके समयमें 'म्रियते' के अर्थमें 'शवति' का प्रयोग कम्बोजोंमें होता था और अुसके कृदन्तका संज्ञा रूपसे आर्योंमें प्रयोग होता था। यास्कने लिखा है—'शवतीति कम्बोजेषु, शव अित्यार्येषु।'

स्वाध्याय :—

(१) अव्ययकी परिभाषा बताअिये ?

(२) संस्कृत और फारसीके अव्ययोंका हिन्दीमें किस प्रकार प्रयोग होता है ?

(३) अपने अव्यय न होनेपर हिन्दीमे अव्यय कहाँसे लिये जाते हैं ?

(४) अुपसर्गोका प्रयोग कहाँ और क्यो किया जाता है ?

(५) 'निखट्टू' शब्द किस प्रकार बना ?

(६) देश-प्रदेशके भेदसे धातुके प्रयोगमें क्या अन्तर होता है ?

(७) नीचे लिखे वाक्य शुद्ध कीजिये :—

'जहाँ तुम बताओगे तब हम आ जायँगे', 'हमरा काम शनैः से होगा', वह आदमी बड़ा निखट्टा है।

पन्द्रहवाँ अध्याय

वाक्य-प्रकरण

आपने देखा— भाषाकी अिकाअियाँ वाक्य, वाक्यकी अिकाअियाँ पद (या 'शब्द') और पदोंकी अिकाअियाँ वर्ण या अक्षर हैं। वर्णोंका स्वरूप तथा वर्गीकरण आदि देखकर पद देखें। पदके दो भेद 'नाम' तथा 'क्रिया' के रूपमें किये। अिनका परिवार देखा, अिनके परिकर देखे– विशेषण-अव्यय आदि। अींट, चूना, सीमेंट, चौखट, किवाड़ आदि सब तयार हैं। अब वाक्य-रूपी महल खड़ा करनेमें कोअी दिक्कत नहीं–यथा-स्थान सब जमा दीजिये—

'राम घरमें बैठा मजेसे पुस्तक पढ़ रहा है' 'राम', कर्ता, 'घर' अधिकरण, 'बैठा' कर्तृ-विशेषण (कृदन्त), 'मजेसे' क्रिया-विशेषण (पढ़नेसे अन्वित) 'पुस्तक' कर्म और 'पढ़ रहा है' वर्तमान कालकी संयुक्त क्रिया। क्रियाका होना जारी है– पढ़ना जारी है, यह सहायक क्रियासे बोध।

साधारणतः पहले कर्ता, फिर कर्म और तब क्रिया-पद रखते हैं। क्रियाका प्रयोग प्रायः अन्तमें होता है; परन्तु यदि कहीं अन्यत्र जोर देना हो, तो फिर अुसे ही अन्तमें रखा जाता है—

'यहाँ आप भोजन कीजियेगा'

साधारण वाक्य है। परन्तु 'यहाँ' पर जोर देना हो, तो अुसे पीछे ले जाअेंगे—

'भोजन आप कीजियेगा यहाँ'

मतलब यह कि और चाहे जो चाहे जहाँ (खानादि) करें, पर भोजन यहीं आकर करना होगा। किस पदका कहाँ किस तरह प्रयोग करना चाहिअे, जिससे कि भाषा जोरदार और बढ़िया बन जाय; यह अेक पृथक् विषय है।

संयुक्त वाक्य

साधारण वाक्य आप ऊपर देख चुके हैं। यदि कभी वाक्य किसी अव्यय आदिसे जुड़कर आयें, तो उन (जुड़े हुअे वाक्यों) की अेक अिकाअी बन जाती है—वे सम्मिलित रूपसे 'संयुक्त वाक्य' कहलाते हैं। कुछ लोगोंने अिसे वाक्योंके बहुत भेद करके बातका बतंगड़ बना दिया है। 'संयुक्त क्रिया' बता दी। अुसके शतशः प्रयोग-भेद हैं; परन्तु सब भेदोंके अलग-अलग नाम रखकर अुनकी व्याख्या करना जरूरी नहीं। अिसी तरह 'संयुक्त वाक्य' बता दिया, बस। फिर अुसके बहुत प्रयोगभेद हैं। बात यहीं नहीं रही, नाम भी बहुत गलत रखे गये हैं। वस्तुतः सभी अैसे वाक्य 'संयुक्त' हैं; किन्तु हिन्दी के वैय्याकरणोंने 'मिश्रित' तथा 'जटिल' आदि नाम रख-रखकर बड़ी बेढ़ब खिचड़ी पकाअी है! 'मिश्रित वाक्य' क्या चीज है? चावल और दाल मिलाकर रख दो, तो वे दोनो चीजें मिश्रित-रूपमें 'खिचड़' कहलाअेंगी। खिचड़ी अेक 'मिश्रित' चीज है—'दाल-चावल मिले हुअे' परन्तु रेलके डिब्बे अेक-दूसरेसे युक्त या संयुक्त रहते हैं- मिश्रित नहीं। वाक्य भी अेक दूसरेसे संयुक्त होते हैं, मिश्रित नहीं। यदि अेक वाक्यके पद दूसरेमें और दूसरेके पहलेमें तथा तीसरेमें जा मिले हों, तब 'मिश्रित वाक्य' कह सकेंगे। क्या अैसा होता है?

'जटिल' नाम भी बेढंगा है। जटिलता तो भाषाका बड़ा भारी दोष है। गम्भीर विषयोंके वाक्य गम्भीर जरूर होते हैं; पर जटिलता सर्वथा पृथक् चीज है! जटिलता वाक्य-भेद निरूपणमें आनेवाली चीज नहीं; प्रत्युत दूषित भाषाका विवरण देनेमें अुसे समझाया जा सकता है।

तो, संयुक्त वाक्य आप देखिए। कभी-कभी दोनों क्रियाओंकी तात्कालिकता प्रकट करनेके लिये संयुक्त वाक्य बनाया जाता है—

'पिताजी घर आये नहीं कि मैं घरसे चला नहीं'। 'कि' अव्ययने दोनों वाक्योंको जोड़ रखा है। मतलब यह कि पिताजीके घर आते ही मैं

चल पड़ूँगा । यही यहाँ 'नहीं' निषेधार्थक अव्यय नहीं है, जोर देनेके लिये है । कभी केवल 'न' भी जोर देनेके लिये आता है—

तो, आप ही पुस्तक लिख दें न !'

'और' भी जोड़ता है—

'पिताजी आये और हम चले'

कभी-कभी कारण-कार्यकी अनिवार्यता या क्षिप्रकारिता प्रकट करनेके लिये भी संयुक्त वाक्य बनाया जाता है—

'तुमने वह मिठाअी खाअी और हैजा हुआ ।'

तुमने वह मिठाअी खाअी कि हैजा हुआ

तुमने वह मिठाअी खाअी नहीं कि हैजा हुआ नहीं । वैसी मिठाअी खाना हैजेका हेतु है । तुरन्त हैजा होगा, यह बात संयुक्तताके कारण प्रकट हुअी ।

कभी-कभी अगला वाक्य कर्मकारकके रूपमें आता है—

'रामने कहा कि मैं अवश्य जाअूँगा'

पूर्व वाक्यमें 'कहा' सकर्मक क्रिया है । अुसका कर्म अगला पूरा वाक्य है । 'कि' ने दोनोंको जोड़ रखा है । 'कि' के अभावमें निर्देशक चिह्नसे दोनों सम्बद्ध होते हैं—

रामने कहा—'मैं अवश्य जाअूँगा'

यहाँ भी अगला वाक्य कर्म है । 'कि' तथा निर्देशक चिह्न अेक साथ नहीं आते । अिसी तरह 'कि' और अल्पविराम भी साथ-साथ नहीं आते—

'रामने कहा कि, मैं जाअूँगा'

ठीक नहीं । 'कि' रख लो, या अल्पविराम-सूचक चिह्न रख लो ोनों अेक ही काम करते हैं । अनावश्यक रूपसे वाक्योंका जोड़ना ठीक नहीं ोता—

" भारतके अुत्तरमें हिमालय है, जो पृथ्वीका सबसे बड़ा पर्वत है ार जहाँ अैसी दिव्य औषधियाँ होती हैं, कि जिनसे बड़ेसे बड़ा रोग मिट ाता है—अैसा बड़ा रोग, जो किसी भी तरह न मिटता हो ।"

कैसा बेढंगा ('जटिल') वाक्य है ! जैसे ऊँटकी पूँछसें ऊँट बँधते गये हों ! यदि वह सब अलग-अलग छोटे-छोटे वाक्योंमें कहा जाय, तो अधिक अच्छा—

भारतके उत्तरमें पृथ्वीका सबसे बड़ा पर्वत हिमालय है। वहाँ ऐसी दिव्य औषधियाँ होती हैं, जिनसे बड़ेसे बड़ा असाध्य रोग भी मिट जाता है।

विराम-चिह्न

विराम-चिह्नोंमें पूर्ण-विराम (।), अर्द्ध-विराम (;), अल्प-विराम (,), निर्देशक (—) तथा अवरोधक या कोष्ठक ( ) मुख्य हैं। किन्तु, परन्तु, तो भी, तथापि आदिके पहले प्रायः अर्द्धविराम आता है। विराम-चिह्न दिये बिना भाषामें वैसी स्पष्टता नहीं आती; पर अत्यधिक विराम-चिह्न भी भाषाको बिगाड़ देते हैं। अेक सिन्दूर बिन्दुसे महिलाके मुख-मंडल की शोभा बढ़ती है; पर दस-बीस बिन्दियाँ देदी जाअें, तो कैसा लगे ? जहाँ जैसी जरूरत। यह सब अभ्याससे स्वतः मालूम हो जाता है।

स्वाध्याय :—

१. वाक्य बनानेमें कर्ता, कर्म और क्रियाकी व्यवस्था कैसी होती है ?
२. संयुक्त वाक्य किसे कहते हैं ? कैसे बनाया जाता है ?
३. विराम चिह्न कौन-कौन है ? अुनका प्रयोग बतलाअिअे।
४. किन्तु, परन्तु, तो भी के पूर्व कौन सा विराम-चिह्न प्रयुक्त होता है ?
५. नीचे लिखे वाक्योंमें विराम चिह्न लगाअिअे :—

(अ) अच्छा माँ यह तो कहो तुम्हारा नाम वसुन्धरा वसुधा किसने रखा यह नाम व्यास वाल्मीकि पाणिनि कात्यायन आदि सुसन्तानोंका दिया जान पड़ता है। न जाने तुम्हारे वे पुत्र तुम्हें कितने आदर कितनी श्लाघा और श्रद्धासे तुम्हे पुकारते थे।

(आ) मोटरों ताँगों और अिक्कोंके आने-जानेका मिश्रित स्वर चमचमाती हुअी कारका म्यूजिकल हार्न·····बचना भैया हटना राजा बाबू अक्खा तिवारोजी हं, नमस्कार हटना भाअी आदाब अर्ज दारोगाजी

सोलहवाँ अध्याय

भाषाका प्रकृति आर पदोंका प्रयोग

प्रत्येक भाषाकी अपनी प्रकृति होती है, अपना प्रवाह होता है। कोअी भी व्याकरण अुसकी अुस प्रकृति या प्रवाहको भंग नहीं कर सकता। संस्कृतमें महाकवि श्रीहर्षकी अेक सूक्ति है—

भंक्तुं प्रभुर्व्याकरणस्य दर्पम्,
पदप्रयोगाध्वनि अेष लोकः।
शशो यदस्यास्ति 'शशी' ततोऽयम्,
अेवं मृगोऽस्यास्ति 'मृगी'ति नोक्तम्!

व्याकरणसे भी प्रबल भाषाका लोक-प्रवाह होता है। 'शशांक'की तरह 'मृगांक' का प्रयोग होता है; पर 'शशी' की तरह 'मृगी' चन्द्रमाको कभी किसीने नहीं कहा!

यदि कोअी यह समझकर कि 'शशी' की तरह 'मृगी' भी व्याकरणसे बन सकता है, अपने वाक्यमें 'नक्षत्राणां पतिर्मृगी' लिख दे, तो अपना अुपहास कराअे। तब व्याकरण अुसकी रक्षा न करेगा। जो व्याकरण भाषा-प्रवाहके विरुद्ध जाअेगा, अुसे कोअी पूछेगा नहीं।

भाषाकी प्रकृतिमें कोअी दखल नहीं दे सकता, अुसे बदल नहीं सकता। भाषाअें सदा आपसमें, आवश्यकतानुसार, शब्दोंका आदान-प्रदान किया करती हैं; परन्तु क्रिया-शब्द कभी भी कोअी भाषा किसी दूसरी भाषासे नहीं लेती। क्रियाशब्द ही भाषाकी अपनी पूँजी है। किसीके बलपर अुसकी सत्ता है। अब कोअी कहे कि जब कि भाषा किसी दूसरी भाषासे संज्ञा शब्द तथा विशेषण आदि लेती है, तो क्रिया शब्द भी लेनेमें क्या हर्ज तो अुसकी बात कोअी न सुनेगा! अिसी तरह विभक्तियाँ अपनी, प्रत्यय अपने।

हिन्दीने अव्यय भी किसी दूसरी भाषासे नहीं लिये; संस्कृतके अतिरिक्त। फारसी आदिसे न जाने कितने शब्द हिंदीने लिये; पर अव्यय बहुत कम। 'कि' अव्यय हिन्दीका अपना है, जो प्राकृत अपभ्रंशोंके किसी भेदसे कहींसे आया है 'और' आदिकी तरह। फारसी आदिमें भी 'कि' हो, तो यह अलग बात है। 'गधे' का वाचक 'ख़र' शब्द फारसीमें है और 'ते नर खर कूकर सूकर सम' आदिमें हिन्दी 'खर' का प्रयोग उसके लिये करती है; तो यह कौन कहेगा कि हिन्दीमें 'खर' फारसीसे आया! जिस (संस्कृत) भाषासे हिन्दीमें तद्रूप 'खर' आया, उसीसे फारसीमें तद्भव 'ख़र' होकर रमा। आगत शब्दको भाषा अपनी प्रकृतिके अनुसार ढालकर 'तद्भव' बना लेती है। भारतीय उच्चारण-यन्त्रोंमें वैसी खरखराहट नहीं; इसलिये 'बाज़ार' आदि विदेशी शब्द 'बाजार' जैसे तद्भव रूपमें ही यहाँ गृहीत हुये हैं। जनता यहाँ 'बाजार' बोलती है—'ज़ा'को 'जा' बोलती है; जैसे 'जाल'का 'जा'। इसलिये 'बाज़ार' आदि लिखना हिन्दीकी प्रकृतिके विरुद्ध है। अवश्य ही हमें अपनी लिपिमें 'ज़, फ़, ग़' आदि ध्वनियाँ बच्चोंको सिखानी चाहिये; क्योंकि उर्दू-फारसीके पद्य उद्धृत करने हों, तो उसी तरह तद्रूप लिखनेमें उनका उपयोग होगा। अेकधि 'जलील' तथा 'ज़लील' जैसे शब्दोंका भेद समझानेके लिये अपनी भाषामें अनन्त विकृति बढाना उचित नहीं। व्यक्ति-वाचक संज्ञा तो बदल ही नहीं सकती; इसलिये यह अच्छा होगा कि भिन्न दो शब्दोंमें जो 'कुत्सित' का पर्यायं हो, उसे छोड़ दें। उसके बिना भाषामें कोभी कमी न आ जायेगी। 'नीच' शब्द बहुत सरल है। पहले मुसलमान कवि भी हिंदीमें फारसी आदिके अनावश्यक शब्द नहीं देते थे। महाकवि सौदा अेक 'मरसिया' यों कहते हैं:—

अैसी नींद कहाँसे आअी, दूध भी माँगन रोए तुम!
कन्धेसे लग बापके अपने, सोए सो बस सोए तुम!

यह पद्य उर्दूका कहा जाता है, इसलिये कि सौदाने इसे अरबी लिपिमें लिखा है! परन्तु लिपि-भेदसे क्या भाषा-भेद हो जाता है?

हाँ, हो जाता है। तभी तो हिन्दीसे अुर्दूको लोग अेक पृथक् भाषा कहते-मानते हैं। अन्यथा, अुर्दू कोअी पृथक् भाषा नहीं। 'राम रोटी खाता है', हिंदी है, अुर्दू भी। नागरीमें लिखो, तो 'हिन्दी' और अरबी लिपिमें लिखो, तो 'अुर्दू'। जब कहा जाता है कि 'अुर्दूको भी अुत्तर प्रदेशमें क्षेत्रीय भाषा बनाना चाहिए'; तो मतलब यह रहता है कि "नागरीके साथ अरबी लिपिको भी बरतना चाहिए।" परन्तु यह गौण प्रयोग है। लिपि और चीज है, भाषा और चीज। अेक ही (नागरी) लिपिमें मराठी, संस्कृत तथा हिन्दी; तीन भाषाअें लिखी जाती हैं, जो (अेक लिपिके कारण) दूरसे या अनजान व्यक्तिको अेक ही जान पड़ेंगी; पर भिन्न-भिन्न (भाषाअें) हैं। और, लिपि-भेदसे अेक ही भाषाको लोग दो भाषाअें कहते-समझते हैं।

खैर, हम कह यह रहे थे कि हिन्दीमें प्रकृति विरुद्ध 'लैनटर्न' या 'बाज़ार' आदि लिखना भाषाको श्रवणकटु तथा विकृत करना है। अिस तरहकी विकृति भाषा सहन कैसे करेगी? बाबू बालमुकुन्द गुप्त हिन्दीके बहुत बड़े लेखक हो गअे हैं। गुप्तजी पंजाबके निवासी थे, अुर्दू-फारसीके विद्वान थे और अेक अुच्च कोटिके अुर्दू अखबारके सम्पादक थे। महर्षि पं. मदन-मोहन मालवीय आपको हिंदीमें खींच लाअे। तब कअी हिंदी-पत्रोंमें काम करके कलकत्तेके 'भारत मित्र' के आप प्रधान सम्पादक हुअे। अुन दिनों 'भारत मित्र' हिंदीका सर्वश्रेष्ठ समाचारपत्र था। ता. १९ फरवरी सन् १९०० के 'भारत मित्र'में, अबसे बावन वर्ष पहले, गुप्तजीने 'हिंदीमें बिन्दी' शीर्षक अेक सम्पादकीय टिप्पणी लिखी थी। अुसका कुछ अंश यों है:—

"काशीकी नागरी प्रचारिणी सभा हिंदीमें बिन्दी चलाना चाहती है। यह बिन्दी अक्षरके अूपर नहीं, नीचे हुआ करेगी। अैसी बिन्दी लगानेका मतलब यह है कि अुससे अुर्दू (फारसी) शब्द हिंदीमें शुद्ध लिखे-पढ़े जायँ। हिंदीमें खाली 'ज' होता है और अुर्दूमें (फारसीमें!) 'जीम' 'ज़ाल' 'ज़े' और बड़ी 'जे' 'ज़्वाद' तथा 'ज़ोय'। 'जीम' के सिवा अिन सब अुर्दू

अक्षरोंका अुच्चारण 'जे' के अुच्चारणके तुल्य होता है। 'जे' का अुच्चारण जिह्वाके अूपर दाँतोंके साथ मिलनेसे होता है। नागरी प्रचारिणीवाले चाहते हैं कि दिन्दीके 'ज' के नीचे अेक बिन्दी लगाकर अुर्दूके 'जे' का अुच्चारण करें। हिन्दीमें अैसा अुच्चारण नहीं; क्योंकि वास्तवमें 'ज़े' ('ज़') 'जीम' ('ज') का ही विकार है। वह फारसीवालोंके कण्ठकी खराबीके सिवा और कुछ नहीं। अुस खराबीको नागरी प्रचारिणी हिन्दीमें भी धँसाना चाहती है। परन्तु अिस धँसानेसे लाभ क्या, अिसका पता ठीक नहीं लगता।

'ज़े'–'जाल' की खराबी अुर्दूमें यहाँ तक है कि बहुत लोग वर्षों शिक्षा पाने तथा लुगातों (शब्दकोशों) को कीड़ोंकी तरह चाट जानेपर भी 'ज़े'–'जाल' का भेद ठीक-ठीक नहीं जान पाते! कितनी ही बार वे अिस झगड़ेमें पड़ते हैं कि अमुक शब्द 'जाल' से है, या 'ज़े' से! जब स्वयं अुर्दू जाननेवालोंकी यह हालत है, तो 'नागरी प्रचारिणी सभा' हिन्दीको पराये काँटोंमें क्यों घसीटना चाहती है? 'लज़्ज़त' 'जाल' से होती है, 'लाज़िम' 'ज़े' से और 'ज़रूर' 'ज़्वाद' से और 'ज़ाहिर' 'जोय' से! नागरी प्रचारिणी सभाके रूलसे अेक बिन्दी नीचे लगा देनेसे सबका अुच्चारण 'शुद्ध' हो गया! परन्तु अिसमें 'जाल' 'ज़्वाद' और 'जोय' की क्या पहचान रही? यदि 'जाल' 'ज़्वाद' 'जोय' का फर्क करना मंजूर नहीं, तो बिन्दी लगानेकी जरूरत नहीं है और यदि अुन सबमें भेद समझा जाता है, तो फिर 'जाल' 'ज़्वाद' 'जोय' की भी कुछ पहचान रहनी चाहिए। नागरी प्रचारिणी सभावालोंसे हमारा यह प्रश्न है कि अिस बिन्दीसे अुर्दू न जाननेवालोंका क्या अुपकार होता है? वे कैसे जानेंगे कि किस शब्दके नीचे बिन्दी लगानी चाहिए? क्या आप लोग बिन्दी लगा-लगाकर अुर्दू शब्दोंका अुनके लिए कोश तैयार कर देंगे? और हिन्दीवाले आपके अुस कोशको 'मियाँ मिट्ठू' की तरह दिन भर रटा करेंगे? यदि अैसा होगा, तो आप लोगोंकी हिन्दी, खुदाके फजलसे, अुर्दूसे भी सरल हो जाअेगी और तीन महीनेकी जगह

तीन-तीए नौ वर्षोंमें सीखी जाअेगी। और, यदि अुर्दू न जाननेवालोंको बिन्दी लगानी ठीकसे न आअेगी, तो आप लोगोंकी हिन्दीमें लबड़-धोंधों मच जाअेगी। कोअी बिन्दी लगाअेगा, कोअी नहीं लगाअेगा।

बिन्दीकी बीमारी नागरीप्रचारिणी सभाके जन्मके पहले भी लोगोंमें हो चुकी है। वृन्दावन निवासी पण्डित राधाचरण गोस्वामीने नागरीदासकृत 'अिश्क चमन' छापा था। अुसमें अुन्होंने अुर्दू शब्दोंमें खूब बिन्दीकी भरमार की थी; यहाँतक कि जिन शब्दोंके नीचे बिन्दी नहीं लगानी चाहिअे, अुनके नीचे भी लगा दी थी! स्वर्गवासी पं० प्रतापनारायण मिश्र अुसे पढ़ते-पढ़ते लोटपोट हो गअे थे और कहा था कि 'यह बिन्दीकी बीमारी हिन्दीवालोंको अच्छी लगी! यह अुनको दूरतक खराब करेगी।'

नागरी प्रचारिणी सभाके ही मेंबरोंमें अेक बहुत बड़े आदमी थे, जो अँग्रेजी-हिन्दीके बड़े पण्डित थे! वे 'वकील' शब्दमें बड़ा 'काफ' बोलते थे। वे समझते थे कि बड़ा 'काफ' बोलनेसे ही अुर्दू हो जाती है! अिसी तरह बिन्दीकी बीमारीमें पड़कर अुर्दू न जाननेवालोंको बड़ी ठोकरें खानी पड़ती हैं!.....

अुर्दूमें 'ते' होती है, 'तोय' होती है। दोनोंके अुच्चारणमें नागरी प्रचारिणी सभाने क्या भेद रखा है, सो हमें मालूम नहीं। 'से' 'सीन' और 'स्वाद' अिन तीनों अक्षरोंका अुच्चारण अेक ही सा होता है। अिसमें आप लोग क्या भेद रखना चाहते हैं? 'अलिफ' और 'अैन' का भी कुछ भेद नहीं मालूम पड़ा! अिस प्रकारकी घसीटनमें हिन्दीको क्यों फँसाया जा रहा है?"

गुप्तजीने जैसा कोश तैयार कर देनेकी कल्पना की थी, अुस 'सभा' जनताका लाखों रुपया खर्च करके वैसा कोश 'हिन्दी शब्द-सागर' तैयार कराया और कुछ लोगोंने अुसे मियाँ मिट्ठूकी तरह बहुत रटा भी और बड़-धों धों भी खूब चली! यहाँ तक कि 'कन्नौज' को भी 'कन्नौज़' लिखा

जाने लगा और संस्कृत-तत्सम 'शाखा' 'कफ' 'नगर' आदिको 'शाख़ा' 'कफ़' 'नग़र' आदि लिखा जाने लगा !

मेरे जैसे लोग 'जायका' जैसे शब्द न लिख पाते ! 'जायका' लिखें, या 'जायक़ा' लिखें या कि 'जायका' लिखें; कुछ समझ नहीं पड़ता था। तब मैंने आवाज उठाई। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके शिमला-अधिवेशनमें अेक प्रस्ताव रखा कि हिन्दीमें फारसी आदिके शब्द तद्भव रूपमें ही (नीचे बिन्दी लगाए बिना) लिखे जाया करें। वहाँ 'काशी नागरी प्रचारिणी सभाके प्रमुख जन विद्यमान थे। अुनमेंसे किसीने भी मेरे प्रस्तावका विरोध न किया और अिसके बाद 'सम्मेलन' तथा 'सभा' के प्रकाशनोंमें नीचे बिन्दी लगाना बन्द कर दिया गया। अब तो बाबू रामचन्द्र वर्माके भी सब प्रकाशन नीचे बिन्दी लगाये बिना ही निकल रहे हैं।

अिस तरह प्रकृतिके विरुद्ध लाअी हुअी अेक चीजने अितनी 'दूर-तक हिन्दीवालोंको 'खराब' किया ! अन्ततः हिन्दी अपनी प्रकृतिमें आयी। सो, भाषाको अुसकी प्रकृतिके विरुद्ध ले जानेकी चेष्टा कभी न करनी चाहिअे। श्रम व्यर्थ जायगा। प्रवाहके विरुद्ध जाना ठीक नहीं

अिसी तरह संस्कृतके—

'राष्ट्रिय' तथा 'राजनीतिक' शब्द

भी हिन्दी-प्रकृतिके अनुकूल नहीं हैं। अिन्हें भी काशीवालोंने ही हिन्दीमें फेंका ! परन्तु हिन्दीने अिन्हें स्वीकार न किया। हिन्दीकी प्रकृति असन्दिग्धताकी ओर है। संस्कृत तत्सम शब्द ग्रहण करनेमें भी यही नीति है। संस्कृतमें 'विस्तर' तथा 'विस्तार' ये दो शब्द विषय-भेदसे चलते हैं। 'अहो वनस्य विस्तारः' ! वनका विस्तार अचरजमें डालनेवाला है ! परन्तु शब्द-सम्बन्धी विस्तारके लिअे वहाँ (संस्कृतमें) 'विस्तर' चलता है, 'विस्तार' नहीं। 'विस्तरेण सर्वं प्रतिपादितम्' विस्तारसे सब प्रतिपादन किया।

संस्कृताभिमानी कोअी भी व्यक्ति क्या हिन्दीमें लिख सकता है—'सब कुछ विस्तर से प्रतिपादन किया ?' प्रकृति-विरुद्ध कौन जाअेगा ? हिन्दीने 'विस्तर' लिया क्यों नहीं, जानते हैं ? अिसलिअे कि यह अेक शब्द लेलेनेसे फिर प्रसार, प्रकार, विनाश आदिके लिअे लोग 'प्रसर', 'प्रकर' तथा 'विनश' न लिखने लग जाअें ! अेक शब्द लेकर अनन्त झमेले कौन पैदा करे ! अिसी-लिअे हिन्दीने 'विस्तर' न लिया और सर्वत्र 'विस्तार' चलाती है ।

काशीके विद्वानोंने हिन्दीमें 'राष्ट्रीय' तथा 'राजनीतिक' शब्द चल ने चाहे; यद्यपि वहाँ 'राष्ट्रीय' तथा 'राजनैतिक' शब्द भी व्याकरण-सिद्ध हैं । फल यह हुआ कि 'राष्ट्रिय' की तरह लोग 'प्रदेशिय' तथा 'प्रांतिय' भी लिखने लगे ! 'राजनीतिक' की तरह 'अितिहासिक' जैसे शब्द चलने लगे ! तब अुस प्रवृत्तिका विरोध किया गया । अब तो काशीका 'आज' तथा प्रयागकी 'सम्मेलन-पत्रिका' आदि सभी जगह 'राष्ट्रीय' तथा 'राजनैतिक' रूप ही फिर चल रहे हैं ।

सो, हिन्दीको 'अतिशुद्ध' करनेवाले अधिक अशुद्ध कर देते हैं । अुनके फेंके हुए कूडेकचरेको साफ करनेमें फिर समयका कितना अपव्यय होता है ! अिसलिअे भाषाकी प्रकृतिका सदा ध्यान रखना चाहिए । भाषाके प्रवाहको कोअी जबर्दस्ती बदल नहीं सकता । 'ने' को हिन्दीसे हटा देनेकी व्यवस्था यदि 'सम्मेलन' दे दे, तो अुसे कौन मानेगा ? सरकारी हुक्म हो जाअे कि हिन्दीमें 'ने' का प्रयोग न हो, तो अुस (हुक्म) की छीछालेदर हो जाअेगी ! भाषाके नियमोंको ही 'व्याकरण' कहते हैं और व्याकरण यदि भाषा-प्रवाहके विरुद्ध कुछ कहेगा, तो वही गलत कहा जाअेगा, भाषा अुससे नहीं बदल जाअेगी; जैसा कि श्री हर्षने कहा है ।

परन्तु लिपि बदल सकती है और लिपि-विन्यास बदल सकता है । भाषाकी तरह अिनकी स्थिति नहीं है । कोअी भी विजेता किसी विजित देशकी भाषा नहीं बदल सकता, अुसे कुछ विकृत भले ही कर दे; परन्तु

लिपि बदल सकता है; क्योंकि यह जनतामें वैसी घुली-मिली चीज नहीं। बच्चा माँ-बाप आदिसे सुन-सुनकर स्वतः अपनी भाषा सीख लेता है; पर वह जन्म भर अुन्हें लिखता-पढता देख कर भी, जरा भी लिख-पढ़ नहीं सकता, जब तक सिखाया-पढ़ाया न जाअे। शासक किसी विजित देशकी भाषाको अपनी लिपिमें लिखने लगता है और अुसकी नौकरी-चाकरी करनेवाले भी वैसा ही करने लगते हैं। कभी-कभी अिस प्रकार विजेताकी लिपिको अितनी व्यापकता मिल जाती है कि अपनी लिपि लोग भूल ही जाते हैं! पर भाषा ज्यों की त्यों बनी रहती है। तब अपनी भाषा अुस विदेशी लिपिमें विदेशी शासनके अुठ जानेपर भी, लोग लिखते-पढ़ते रहते हैं। हमारी हिन्दीको भी विदेशी शासकोंने समय-समयपर अरबी तथा रोमन आदि लिपियोंमें चलानेका अुद्योग किया। अरबी लिपि खूब चली भी, परन्तु हम अपनी (नागरी) लिपि भूले नहीं, अुसे अपनाअे रहे। अरबी आदि लिपियोंसे हिन्दीको कोअी नफरत नहीं, अुसने ग्रहण भी किया। अुस 'ग्रहण' को ही 'अुर्दू' कहते हैं। परन्तु अुस लिपिमें हिन्दी अच्छी तरह बैठ नहीं सकती। 'ब्राह्मण' सदा वहाँ 'बिरहमन' ही रहेगा! नागरी लिपिमें कोअी भी भाषा प्रायः ज्यों की त्यों लिखी जा सकती है। परन्तु यह प्रसंगान्तर है। कहा यह जा रहा था कि किसी देशकी भाषा नहीं बदली जा सकती, अुस भाषाकी लिपि बदली जा सकती है और अपनी लिपिमें भी

वर्ण-विन्यास बदल सकता है

अुदाहरणार्थ हिन्दीमें 'जा' धातुके भविष्यत् कालमें—

'जायगा', 'जायेगा', 'जावेगा' और 'जाअेगा'

यों चार तरहसे वर्ण-विन्यास होता है। यह भाषा-भेद या शब्द-भेद नहीं, वर्णविन्यासका भेद है। अेक ही भाषाके अेक ही शब्दको चार तरहसे लिखा जा रहा है। अिसी तरह, अिसी धातुके विधि या आज्ञामें—

राम जाय, जाये, जावे, जाअे

ये चार रूप देखनेमें आते है। परन्तु ये भाषा-विकासकी चीजें नहीं, लिखनेकी गलतियाँ हैं। ठीक करना चाहें, तो कर सकते हैं। वर्ण-विन्यासकी अविचारित विविधता अहिन्दी भाषी जनोंको बहुत परेशानीमें डालती है। इसलिअे तर्कयुक्त निर्णय अपेक्षित है कि अिन रूपोंमें कौन ठीक है और कौन गलत! अैसा निर्णय करनेमें भाषाविज्ञान तथा भाषा-विकासके नियमोंपर ध्यान देना होगा। 'जा' की तरह अन्य सभी धातुओंके रूपोंमें भी अिसी तरह धाँधली है—'लवड़धोंवों' है! यह 'अपनी-अपनी डफलीपर अपना-अपना राग' राष्ट्रभाषाके लिअे ठीक नहीं। अेकरूपता वर्ण-विन्यासमें होनी चाहिअे। 'शिक्षा'-वाचक अँग्रेजीका अेक शब्द है, जिसे कोअी 'अेजूकेशन' बोलते हैं और कोअी अुसे 'अेड्यूकेशन' कहते हैं। परन्तु वर्णविन्यास अेक है, सर्वत्र। जैसा 'अेजूकेशन' बोलनेवाले लिखते हैं, उसी तरह 'अेड्यूकेशन' वाले भी। हिन्दीको अिससे शिक्षा लेनी चाहिअे—कहीं ली भी है। 'रख' धातुकी भूतकालकी क्रियाअें—रखा, रखा है, रखा था आदि लिखी जाती हैं; यद्यपि (हिन्दीभाषी लोगोंमें) अुच्चारण कुछ अैसा होता है—रक्खा, रक्खा है, रक्खा था! मैं जब छोटा था, तो लिखनेमें भी 'रक्खा' चलता देखा था। परन्तु अब अुसका पता नहीं। सर्वत्र 'रखा' लिखा जाता है; यद्यपि बोलचालमें अब भी 'रक्खा' सुन सकते हैं। सोचका 'रखा' रूप स्थिर कर लिया गया; क्योंकि 'रख' धातुका रूप है। 'पढ़' से जैसे 'पढ़ा' और 'लिख' से 'लिखा'; अुसी तरह 'रख' से 'रखा'। अिसी तरह अन्य वर्ण-विन्यासोंमें अेकरूपता आनी चाहिअे। अिस व्याकरणमें वर्ण-विन्यासकी अेकरूपता प्रतिपादित की गअी है, जो तर्क-मूलक है और भाषाविज्ञान तथा भाषाविकासके नियमोंसे समर्थित है। निश्चय ही आगे ये ही रूप चलेंगे। आप विचार कर सकते हैं, देख सकते हैं। क्या—

'जायगा' रूप ठीक है?

क्या प्रमाण है ? 'जायेगा' तथा 'जावेगा' में भी क्या प्रमाण हैं ? 'जाअेगा' रूप शुद्ध है, प्रामाणिक है। अिसके प्रमाणमें हिन्दीकी प्रकृति है, प्रवाह है। हिन्दीकी अकारान्त क्रियाअें--

पढ़ेगा, लिखेगा, करेगा, मरेगा

आदि सामने हैं, जिनसे स्पष्ट है कि भविष्यत् कालकी क्रिया बनानेके लिअे धातुके आगे ('गा' से पूर्व) 'अि' लगती है। अिस 'अि' को चाहे प्रत्यय कहिअे, चाहे 'विकरण'; परन्तु अिसकी सत्ता स्वीकार करनी ही पड़ेगी। तब अन्य तरहकी धातुओंसे भी अिसका मेल समझा जा सकता है। अन्तर अितना है कि अकारान्त धातुओंमें (धातुके) अन्त्य 'अ' के साथ मिलकर यह 'अे' बनती है और अन्य दीर्घस्वरान्त धातुओंसे परे स्वयं (अकेले ही) 'अे' बन जाती है--

सोअेगा, जाअेगा, रोअेगा, नहाअेगा; अित्यादि

यहाँ 'सोयेगा' आदिकी कल्पना गलत है। यह नहीं हो सकता कि प्रत्ययका 'अि' 'य' भी बन जाअे और 'अे' (े) भी बन जाअे। आध सेर दूध है; अुसका आध सेर दही भी बन जाअे और आध पाव रबड़ी भी बन जाअे और ढाअी छटाँक रबड़ी भी बन जाअे! 'अि' को 'य' हो जाअेगा, तो फिर 'अे' का विन्यास अूपर कैसा ? सो, वह 'जायेगा' रूप गलत है। और 'जायगा' भी गलत है। 'अि' बहुधा 'य' के रूपमें आती है; पर यहाँ अुसकी गति नहीं। यदि 'अि' को 'य' होना मान लिया जाअे, तो 'सोयगा' तथा 'रोयगा' आदि रूप भी होंगे। सो, 'जायगा' प्रयोग गलत है। जैसे 'रख' के भूतकालवाले रूपको लोग 'रक्खा' गलतीसे बोलने लगे, अुसी तरह 'जाअेगा' के 'अे' का लघु अुच्चारण करके 'जायगा' बोलने लगे; सो बोलते रहने दीजिअे। राष्ट्रभाषाकी लिखावटमें अेक सुनिश्चित वैज्ञानिक पद्धति होनी ही चाहिअे। 'जावेगा' रूप भी गलत है। जब 'जायेगा' चला, तो अुसी अनुकरण पर 'जावेगा' चला। 'जाया करता हूँ' को पूरबमें बोलते

हैं— 'जावा करित है'। जहाँ 'जाया' की जगह 'जावा' बोला जाता है, वहींके हिन्दी-लेखकोंने 'जावेगा' चला दिया !

जो तर्क 'जाअे' के पक्षमें और 'जायगा' आदिके विपक्षमें दिअे गअे, वे ही विधि-आज्ञा आदिके 'जाअे-आअे-सोअे' आदिके पक्षमें तथा 'जाये, जावे, जाय' आदिके विपक्षमें समझिअे।

अिसी तरह—

बैठिये, अुठिये, चाहिये आदि गलत रूप हैं

बैठिअे, अुठिअे, चाहिअे आदि शुद्ध हैं। बात यह है कि हिन्दीकी अवधी बोलीमें 'अुठिय', 'बैठिय' तथा 'चाहिय' आदि क्रियाअें ढली हैं। राष्ट्रभाषाने अिनके 'य' को 'अे' बना लिया—अुठिअे, बैठिअे, चाहिअे। यह हो नहीं सकता कि 'य' 'अे' भी बन जाय और स्वयं तदवस्थ भी रहे। सेरभर दूधका दही भी बन जाय और (अुतना ही) दूध भी बना रहे; अैसा कहीं देखा-सुना है क्या ? राष्ट्रभाषामें सुना 'अुठिअे' और अवधीके 'अुठिय' का संस्कार छूटा नहीं, तो दोनोंको गड्डमगड्ड करके लिखने लगे— 'अुठिये' ! अिसी तरह 'चाहिअे' को 'चाहिये' चल पड़ा। 'चाहिय' जहाँ ऋषिन कर वासा'—जहाँ ऋषियोंको रहना 'चाहिअे'। अशुद्ध रूप 'चाहिये'।

यहाँ हमने 'अिअे' प्रत्ययकी कल्पना की है, जिसकी अुपस्थितिमें अकारान्त धातुके 'अ'का लोप हो जाता है और शेष धातु प्रत्ययमें जा मिलती है—अुठिअे, बैठिअे, लिखिअे। अन्य धातुओंमें कोअी विकार नहीं होता—

सोअिअे, धोअिअे, जाअिअे, लिखाअिअे, पढ़ाअिअे अित्यादि।

अव्ययके—

'लिअे' को भी लोग गलत 'लिये' लिखते हैं !

'लिअे' अव्ययको 'लिये' करनेमें गलती यों प्रारंभ हुअी कि 'लिया' क्रियाका बहुवचन 'लिये' देखनेमें आया। अेक जगह 'लिये' देखकर दूसरी जगह भी वैसा ही लिखने लगे—दोनोंको अेक ही समझने लगे ! कलकत्ते-

के 'विशाल भारत' में किसी 'समालोचक' ने अभी पिछले ही दिनों अैसा लिखा भी था कि यह अेक ही शब्द हैं, जो कहीं क्रिया-रूप है, कहीं अव्यय-रूप ! अिन लोगोंको कैसे समझाया जाअे कि पिसा हुआ नमक और बूरा अलग-अलग चीजें हैं—स्वाद देख लो न ! 'अर्थभेदात् शब्दभेदः' ये जानते ही नहीं हैं ! अैसें ही 'नीम-हकीम' लोग तो और भी आफत मचाअे हैं।

सो, आप अितना समझ लें कि अव्यय 'लिअे' को 'लिये' लोग भ्रमसें लिख देते हैं ! अब रह गअे रूप—

'गयी-गअी' तथा 'गये-गअे' आदि

अिनमें शुद्ध कौन हैं, अिस प्रश्नके अुत्तरमें यही कहा जा सकता है कि दोनों तरहके रूप शुद्ध हैं, जैसा कि अिसी पुस्तकमें प्रतिपादन किया गया है। परन्तु यहाँ भी अेकरूपताका आग्रह हो, तब 'गअी'-'गअे' रूप ही रहेंगे। कारण, कहीं-कहीं 'य्' का लोप अनिवार्य है– 'की, ली, पी' को देखिअे। ये 'किया, लिया, पिया' के स्त्रीलिङ्ग रूप हैं। जब कि हिन्दीके स्वरूप-विकासमें यों 'य्' का लोप अेक जगह अनिवार्य है, तो सर्वत्र अुसे स्वीकार करना ही होगा, यदि अेकरूपता लानेकी अिच्छा है। अन्यथा, अुभयविध रूप चल ही रहे हैं। अेक सज्जनने मजेदार शंका की। बोले– 'गअी-गअे' लिखने-बोलनेसे हमारे दक्षिण भारतमें गड़बड़ पड़ेगी। यह कैसे समझा जाअेगा कि अिनका मूल क्या है।' मैंने अुनसे कहा कि आप 'गअी-गअे' न चला कर 'गयी-गये' ही रखिये। परन्तु मूल पहचाननेकी बात तो साफ है। जब कि "मैंने संहिता पढ़ली" में 'ली' का मूल रूप समझमें आ जाता है, तब 'गअी-आअी' आदिका भी आ जाअेगा। फिर भी, रुचिकी बात है।

अिस जगह यह भी बतला देना जरूरी है कि हिंदीकी परम्परा लोपके पक्षमें है। खुसरो, कबीर, सूर तुलसी आदिने 'गअी' तथा 'आअे'

जैसे ही प्रयोग किअे हैं। अब अुनकी भाषा कोअी 'शुद्ध' कर दे, यह और बात है। तब तो फिर 'बालकने कार्य किया' के 'बालकने' को शुद्ध करके 'बालकेन' करना होगा और 'किय' को फिर 'कृत' करके वहाँसे पुंविभक्ति [1] हटानी होगी; क्योंकि 'कार्य' शब्द पुल्लिंग नहीं, नपुंसकलिङ्ग संस्कृतमें है। 'कार्य' को भी 'कार्यम्' करना पड़ेगा और अुस 'शुद्ध' 'कृत' के आगे भी 'म्' लगाकर 'रामेण कार्यम् कृतम्' बनाना पड़ेगा। घी को फिर दूधके रूपमें ले आअिअे, यदि शक्ति है; हम मना नहीं कर रहे हैं।

हिन्दीमें विदेशी शब्दोंके प्रयोग

हिन्दीमें अनेक विदेशी भाषाओंके भी शब्द ले लिअे गअे हैं; परंतु विवेक-पूर्वक। हिन्दीने फारसी आदि पड़ोसी भाषाओंसे क्रिया-विशेषण, विशेषण (तथा अव्यय भी कुछ) ले लिअे हैं; परन्तु समुद्र पारकी (अँग्रेजी आदि) भाषाओंसे अिसने अिस तरहके शब्द कतअी नहीं लिअे! हिन्दी-को किसी नेताने, वैयाकरणने या भाषा-विज्ञानीने यह तारतम्य नहीं सम-झाया था। अपने अेशियामें और अुनके योरपमें बहुत अन्तर है; यह हिन्दी-ने स्पष्ट किया। अेशियामें भी अति निकटके अीरान [फारस] की भाषासे जो मेल हिन्दीने रखा है, वह अरबकी भाषासे नहीं। और अीरानी [फारसी] भाषाकी तुलना संस्कृतसे क्या की जाअे! फिर भी क्रियाअें हिन्दीने अपनी ही रखीं। संस्कृतकी क्रियाओंसे यहाँ काम नहीं लिया जाता, यह दूसरी बात है कि ये [हिन्दीकी] क्रियाअें संस्कृत अथवा प्राकृत-अपभ्रंशकी क्रिया-ओंके ही रूपान्तर हैं।

तो, विदेशी शब्द भी हिन्दीमें चलते हैं; बहुत पहलेसे चलते आ रहे हैं—सूर और तुलसीने भी विदेशी शब्दोंके प्रयोग किअे हैं। पर अेक अनुपात है। दालमें नमक जितना अच्छा लगे, अुतना ही डालना ठीक है। 'नमकसे दाल बन जाती है' सुनकर नमक ही नमक भर दोगे, तो वह दाल जहर हो जाअेगी। अिस सम्बन्धमें हिन्दीके परमाचार्य, हिन्दीके युगनिर्माता पं० महावीरप्रसाद द्विवेदीका भी मत देख लीजिअे—"हिन्दीको कालसह

करनेके लिअे यह बहुत जरूरी है कि अुसकी रचना व्याकरण-विरुद्ध न हो, अुसमें सिर्फ अैसे शब्दोंका प्रयोग हो, जो विशेष व्यापक हों; अर्थात् जिन्हें अधिक प्रान्तोंके आदमी समझ सकें। देशभरमें अेक ही भाषा होगी या नहीं और होगी, तो कब होगी, यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। परन्तु तबतक हिन्दीको अधिक व्यापक बनानेमें लाभ है, अिस बातको सभी स्वीकार करेंगे। अतअेव हिन्दीके साहित्यमें प्रान्तज (प्रादेशिक) और क्षण-भंगुर शब्दोंका आना अच्छा नहीं। जो शब्द किसी विशेष प्रान्तके ही लोग समझ सकते हों, अुन्हें 'प्रान्तज' और जो किसी कारणविशेषसे थोड़े ही दिनों के लिअे अुत्पन्न हो गअे हों, अुन्हें 'क्षणभंगुर' कहते हैं। अैसे शब्दोंका प्रयोग न होना चाहिअे। संस्कृतके सरल शब्द और अैसे विदेशी शब्द जिन्हें सब लोग समझते हैं, प्रत्युक्त होने चाहिअे। संस्कृत तकमें विदेशी शब्द हैं। शब्द चिरस्थायी और सबके समझने लायक होने चाहिअे।"

ये विचार द्विवेदीजीने सन् १९०५ के नवंबरमें प्रकट किअे थे, जो आज भी ज्यों-के-त्यों हैं। 'सम्मेलन' तथा 'राष्ट्रभाषा प्रचार समिति' में अिन्हीं विचारोंका अनुगमन है। समिति ठीक वैसी ही भाषा चला रही है, जैसी कि द्विवेदीजी बता गअे हैं। यही महात्माजीकी 'हिन्दुस्तानी' है; अिससे अिधर-अुधर कुछ भी नहीं।

जो विदेशी शब्द सबकी समझसे बाहरके हैं, अुन्हें हिन्दी नहीं लेती। हिन्दीकी प्रकृति अिसके विरुद्ध है। यदि अिस प्रकृतिके विरुद्ध कोअी काम करेगा, तो अुसे मना करनेके लिअे कोअी कानून तो है ही नहीं, करे! किन्तु वह हिन्दी फिर अेक 'खास किस्मकी हिन्दी' हो जाअेगी, अेक खास तरहके लोग ही अुसे समझेंगे और तब अुसका नाम भी अलग पड़ जाअेगा। वैसी हिन्दीका नमूना लीजिअे, जिसे 'सरल अुर्दू' कहा जाता है:—

"कअी सालसे हिन्दुस्तानके आला दर्जेके तालीमयाफ्ता लोगोंका अिस बातकी तरफ़ ख़याल हुआ है कि हिन्दुस्तान भरमें अेक ही रस्मुलख़त

जारी हो। सर गुरुदास बनर्जी साबिक़ जज हाअी कोर्ट कलकत्ताने अंग्रेजीमें अिस बारेमें अेक छोटासा रिसाला लिखा था। जोजो रस्मुलख़त हिन्दुस्तानमें जारी हैं, सबका ज़िक्र करके और सबका तौर-तर्ज़ बख़ूबी समझा अुन्होंने फैसला किया कि सिर्फ़ देवनागरी हरूफ़ही अैसे मुकम्मिल और मौज़ू हैं, जो आसानीसे हिंदके हर हिस्सेमें फैल सकते हैं। अिससे कु. हिन्दमें रस्मुलख़त होनेका हक़ अिन्हीं हरूफ़को हासिल है।

अिस रिसालेको शाया हुये कअी साल हो गअे। अिसका जि मौकेसे फिर किया जाअेगा।

दो साल हुअे, जस्टिस शारदाचरण मित्रने, जो अिस वक़्त कलकत्त हाअी कोर्टके नामवर जज हैं और कलकत्ता यूनिवर्सिटीके अेम. अे; ब अेल. हैं, यूनिवर्सिटी-मज़कूरके मेंबरोंके रूबरू अेक मज़मून पढ़ा था, जिस बहुत अुम्दगीसे यह दिखाया था कि देवनागरी हरूफ़ ही सबसे आला और यही कुल हिन्दमें बतौर 'अेक रस्मुलख़त' के जारी होने चाहिअे।"

यह अिबारत सन् १९०७ के अप्रैल मासमें कानपुरके 'जमान' अुर्दू-मासिक पत्रमें छपी थी। बाबू बालमुकुन्द गुप्तकी लिखी ये पंक्तियाँ हैं, ज सरलसे सरल अुर्दूके हामी थे। परन्तु यह सरलतर अुर्दू भी सबकी समझमें 'अच्छी तरह' नहीं आ सकती; क्योंकि अिसमें अैसे विदेशी शब्दोंका प्रयोग हुआ है, जिन्हें हिन्दीने ग्रहण नहीं किया। यही हिन्दी-अुर्दूका अन्तर है।

सो, शब्दोंके चयनमें सावधानी बरतनी चाहिअे और देखना चाहिअे, भाषाकी प्रकृति तो नष्ट नहीं हो रही है!

शब्दोंके प्रयोगमें सावधानी

शब्दोंके चयनमें ही नहीं, अुनका प्रयोग करनेमें भी पूरी सावधानी चाहिअे। कभी-कभी 'अन्तर' तथा 'अन्तर्' जैसे मिलते-जुलते शब्द बड़ी

गड़बड़ पैदा कर देते हैं ! पिसे हुअे नमकको बूरा समझकर कोअी खीरमें डाल दे, तो क्या होगा ? यही दशा आजकल 'अन्तर्' तथा 'अन्तर' की हो ही है। अिनका अन्तर न समझकर लोग 'अन्तर' की जगह भी 'अन्तर्'का प्रयोग कर रहे हैं और भाषाका स्वरूप बिगाड़ रहे हैं !

प्रयोग-भेद स्पष्ट है। समासमें 'देशान्तर' तथा 'सर्वान्तः साक्षी' -'सर्वान्तर्यामी'—'अन्तःकरण' आदि देखिअे। 'अन्तर' का प्रयोग किसी शब्दके अन्तमें होनेपर 'अन्य' अर्थ होता है—'देशान्तर'– माने, दूसरा या सरे देश। अिसी तरह 'गृहान्तर' आदि। किसी शब्दके पूर्व या पर प्रोगसे अर्थमें विशेषता आ जाती है—'जितरण' का अर्थ है, 'रणको जीतने-ाला' और 'रणजित' का मतलब हो गया 'रणमें जीता जानेवाली'! कितना न्तर हो गया ? यदि 'अन्तर' को परसे अुठाकर पूर्वमें रख दिया जाअे, तो शेषता आ जाती है। 'देशान्तर' का अर्थ है दूसरा या दूसरे देश, यानी पने देशसे भिन्न देश। 'देशान्तर-प्रदर्शनी' का अर्थ होगा, दूसरे देश या शोंकी प्रदर्शनी। परन्तु 'अन्तर' का पूर्व प्रयोग कर दें, तो 'अन्य' के साथ त्र' का भी ग्रहण हो जाता है— 'अन्तर-देश—प्रदर्शनी' या 'अन्तर देशीय प्रदर्शनी' या 'अन्तर-राष्ट्रीय प्रदर्शनी'। मतलब हुआ कि अपने देशकी तथा अन्य देशों या राष्ट्रोंकी प्रदर्शनी। अिसी तरह 'अन्तर-प्रान्तीय' आदि समझिअे। परन्तु भूलसे 'अन्तर-राष्ट्रीय' को 'अन्तर्-राष्ट्रीय' लिखा जाने लगा, 'अन्तर्राष्ट्रीय' में 'राष्ट्रीय' को भी गलत समझा गया और 'राष्ट्रिय' लाकर रखा गया और अिसके बाद संस्कृतकी वह सन्धि की गअी, जिसे हिन्दीने कभी स्वीकार ही नहीं किया—'अन्ताराष्ट्रिय' ! अैसे भ्रष्ट प्रयोग हिन्दीके विद्वानोंने हिन्दीमें चला दिअे, जो बड़ी कठिनाअीसे हटाये जा सके !

सन्धिकी चर्चा आ गअी, तो अेक बात और समझ लीजिअे। कभी-कभी सन्धि करनेसे अर्थमें अन्तर भी आ जाता है, हिन्दीमें। 'सह-अनुभूति'

का अर्थ है—साथ-साथ अनुभव करना। परन्तु 'सहानुभूति' का अर्थ होता है--'समवेदना', जिसे लोग लिख देते हैं--'संवेदना'!

संस्कृत शब्दोंका प्रयोग करते समय बहुधा सावधानी बहुत कम रखी जाती है। 'आज्ञा' आदेशार्थक शब्द है, जिसे 'अनुज्ञा' या 'अनुमति' ['परमीशन'] के अर्थमें लोग प्रयुक्त करते रहते हैं। अिसी तरह 'अभिज्ञ' को बड़े-बड़े 'विज्ञ लेखक' भी 'भिज्ञ' लिखते हैं, जिनकी पुस्तकें हिन्दीकी अुच्च परीक्षाओंमें चल रही है। छात्र अुन्हींसे सब सीखते हैं, अिसलिअे यह जिक्र करके सावधान कर देना जरूरी समझा गया।

शब्दोंके पूर्वापर प्रयोगमें भी गड़बड़ी होती है। अभी अेक अखबारमें शीर्षक था—

'गाडगिलकी हिन्दीको देशव्यापी बनानेकी योजना'! गाडगिल दिल्लीमें और अुनकी 'योजना' बड़ी दूर लंकामें! मेल आप करें! 'गाडगिलकी हिन्दी' नहीं, 'गाडगिलकी योजना' अन्वय है। बात समझमें आ जाती है; पर गड़बड़ी तो है ही!

अिसी तरह 'भारत और कोरियाकी सन्धि' अेक अखबारमें शीर्षक देखा था। मानो भारत तथा कोरियाकी लड़ाअी कभी हुअी हो, जिसकी सन्धि-चर्चा है। 'कोरियाकी सन्धि और भारत' ठीक। अिस तरहकी ग़ बतानेके लिअे हिंदीमें अन्य पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। वहीं वह सब विशेष जिज्ञासुओंको देखना चाहिअे।

स्वाध्याय :—

१. भाषाकी प्रवृत्तिसे क्या तात्पर्य है ?
२. दूसरी भाषासे क्या-क्या नहीं लिया जाता ?
३. 'लिए' और 'लिये' फर्क बताअिये ?
४. 'तत्सम' और 'तद्भव' शब्दोंमें क्या अन्तर है ?
५. हिन्दीमें दूसरी भाषाके शब्द किस प्रकार ग्रहण किये जायँ ?
६. अुन्हें शुद्ध करनेमें हिन्दीमें अति अशुद्ध प्रयोग कैसे चले ?